संस्कृत काव्य-कथाएं

भाग-१

सस्ता साहित्य मण्डल प्रकाशन

कृपया यह ग्रन्थ नीचे निर्देशित तिथि के पूर्व अथवा उक्त तिथि तक वापस कर दें। विलम्ब से लौटाने पर प्रतिदिन दस पैसे विलम्ब शुल्क देना होगा।

6-8-86

संस्कृत काव्य-कथाएं

भारवि, माघ, भट्टि तथा दण्डी के प्रसिद्ध काव्य-
ग्रंथों का कथासार

भाग १

सम्पादक
विष्णु प्रभाकर

१९७५

सस्ता साहित्य मण्डल प्रकाशन

प्रकाशक
मार्तण्ड उपाध्याय
मंत्री, सस्ता साहित्य मंडल,
नई दिल्ली

•

दूसरी बार : १९७५
मूल्य
रु० ४.५०

•

मुद्रक
रूपक प्रिंटर्स
दिल्ली-३२

प्रकाशकीय

प्रस्तुत संग्रह में संस्कृत के चार प्रसिद्ध काव्य-ग्रंथों का कथासार हिन्दी में दिया गया है। वे काव्य-ग्रंथ हैं भारविकृत 'किरातार्जुनीय', माघकृत 'शिशुपाल वध', भट्टिकृत 'रावण-वध' तथा दण्डीकृत 'दशकुमार-चरित' (भाग १ और २)।

वास्तव में ये काव्य-ग्रंथ भारतीय साहित्य की अनमोल निधि हैं। सामान्य पाठक, विशेषकर नई पीढ़ी, इन काव्य-ग्रंथों से परिचित हो सके, इस उद्देश्य से हिन्दी में इनकी कहानियां बड़ी सरल तथा रोचक शैली में तैयार कराकर यहां दी गई हैं।

पाठकों से हमारा अनुरोध है कि वे इन्हें अवश्य पढ़ें और अपने मित्रों तथा संबंधियों को भी पढ़वायें।

—मंत्री

विषय-सूची

भूमिका

'किरातार्जुनीय' की रचना-शैली बहुत ही मनोहर और अर्थ-गौरव-पूर्ण है। प्रकृति का वर्णन तो इतना सुन्दर है कि मन मुग्ध हो उठता है। इसके लेखक भारवि राजनीति के पंडित थे। उनकी इस कृति में नीति भरी पड़ी है। वह परम शैव थे।

माघकृत 'शिशुपाल वध' की कथा बड़ी साधारण है, पर कवि ने अपनी प्रतिभा से उसमें अद्‌भुत चमत्कार पैदा कर दिया है। उनका ऋतु-वर्णन, अलंकारों का प्रयोग, प्रकृति-निरीक्षण-शक्ति तथा वाक्चातुरी सब निराली हैं।

महाकवि भट्टि का 'रावण-वध' सौराष्ट्र की तत्कालीन राजधानी वलभी में लिखा गया था। लेखक ने व्याकरण के सूत्रों के उदाहरणों को काव्य के श्लोकों में इस तरह भर लिया है कि काव्य के पढ़ने के साथ-साथ व्याकरण का भी अच्छा ज्ञान हो जाता है। रावण के वध पर विभीषण का विलाप अनूठा है।

'दशकुमार चरित' में महाकवि दण्डी ने तत्कालीन समाज के निचले स्तर का चित्र खींचा है। कवि शायद इस गंदी समाज-व्यवस्था का भण्डा-फोड़ करके आदर्श समाज की कल्पना हमारे सामने रखना चाहता था। लेखक अपने पद-लालित्य के लिए प्रसिद्ध हैं।

—सम्पादक

किरातार्जुनीय

कौरव-पांडवों की कहानी कौन नहीं जानता। उनमें आपस में बड़ी अनबन थी। कौरव चाहते थे कि हस्तिनापुर का राज्य उनके हाथ में रहे। उन्होंने कई बार पांडवों और उनकी पत्नी द्रौपदी का अपमान भी किया; किन्तु पांडवों ने चुपचाप उसे सह लिया और अनबन को आगे नहीं बढ़ने दिया।

बड़े पांडव युधिष्ठिर में जहां अनेक गुण थे, वहां एक अवगुण भी था। वह जुआ खेलने की कला में बड़े निपुण थे। कौरवों ने युधिष्ठिर के इस अवगुण से लाभ उठाने की पूरी चेष्टा की। दुर्योधन उनमें सबसे बड़ा था। जब पांडव इन्द्रप्रस्थ में राज्य करते थे तो उसने युधिष्ठिर को जुआ खेलने के लिए न्यौता भेजा। युधिष्ठिर ने यह न्यौता स्वीकार कर लिया। जुए का खेल हुआ। बाजी लगाई गई कि जो हार जाय वह बारह बरस तक जंगल में निवास करे। युधिष्ठिर हार गये। एक बार तो राजा धृतराष्ट्र ने उनका राज्य उनको लौटा दिया, परन्तु दुर्योधन हार माननेवाला

नहीं था। उसने युधिष्ठिर को एक बार फिर जुआ खेलने का न्यौता दिया। इस बार भी युधिष्ठिर हारे और अपने भाई भीम, अर्जुन, नकुल, सहदेव तथा पत्नी द्रौपदी के साथ तेरह वर्ष के लिए वन चले गये। इनमें से एक वर्ष अज्ञातवास में रहने की शर्त थी। वे द्वैत-वन नाम के एक जंगल में जाकर रहने लगे।

वहां रहते जब कई वर्ष बीत गये तब एक दिन युधिष्ठिर ने दुर्योधन का समाचार जानने के लिए एक वनवासी किरात को हस्तिनापुर भेजा। किरात ब्रह्मचारी का वेश धारण कर वहां गया और दुर्योधन का समाचार लेकर वापस लौट आया। यहीं से इस काव्य की कथा आरम्भ होती है।

: १ :

किरात ने महाराजा युधिष्ठिर से कहा, "दुर्योधन इस समय राज्य का नीतिपूर्वक शासनकर रहा है। 'मैं राजा हूं, मेरा यही धर्म है,' ऐसा समझकर वह शत्रु और मित्र के साथ उचित व्यवहार करता है। बड़े-बड़े राजा उसे कर देते हैं। उसके राज्य में बढ़िया खेती होती है। प्रजा प्रसन्न है। उसने दुःशासन को युवराज बनाया है और स्वयं यज्ञ आदि करता रहता है; पर वह आपकी चर्चा नहीं सुन सकता। वह आपको मिटाना चाहता है। आपको भी उसका नाश करने के लिए

उचित उपाय करना चाहिए।"

यह सुनकर महाराजा युधिष्ठिर ने वनवासी को पुरस्कार देकर विदा किया और सब समाचार अपने भाइयों तथा पत्नी को सुनाया। द्रौपदी यह समाचार सुनकर बड़ी दुखी हुई। दुर्योधन कई बार उसका अपमान कर चुका था। उससे चुप नहीं रहा गया। बोली, "हे नाथ, स्त्री पुरुष को उपदेश दे, यह उचित नहीं समझा जाता; परन्तु फिर भी मेरे अन्दर जो दर्द भरा हुआ है वह मुझे कुछ कहने के लिए विवश कर रहा है। क्षमा कीजिए! इन्द्र के समान तेजवाले आप के पुरखों ने जिस धरती का राज भोगा उसे आपने योंही खो दिया। आपके सिवा ऐसा और कौन कर सकता है? जो दुष्टों के साथ दुष्टता का बर्ताव नहीं करते वे सदा हारते हैं। जो भीम पहले उत्तम रथ पर चढ़कर चलते थे वह आज पैदल पथरीली धरती पर घूमते हैं, इन्द्र के समान अर्जुन पेड़ों की छाल पहनकर जीवन बिता रहे हैं। नकुल और सहदेव दोनों जंगली हाथियों की तरह हो गये हैं। सबकी दुर्दशा देखकर आपका क्रोध क्यों नहीं भड़कता? आपकी अपनी क्या दुर्दशा हो गई है! जंगली फल खाते-खाते आपका शरीर दुर्बल नहीं हुआ है, यश भी दुबला गया है। इसलिए आप अब शांति छोड़कर शत्रुओं को नष्ट करने के लिए

अपना पुराना तेज धारण कीजिए। शांति, धैर्य तथा संतोष तो मुनियों के लिए हैं, राजाओं के लिए नहीं। आप सबकुछ कर सकते हैं। आपका तेज असीम है। फिर भी शत्रु पर विजय पाने के लिए आप समय की बाट जोह रहे हैं, यह उचित नहीं है। विजय चाहने-वाले राजा समय के अनुसार किसी-न-किसी बहाने सन्धि को भी तोड़ देते हैं।"

द्रौपदी की बातें सुनकर भीम से भी चुप नहीं रहा गया। वह बोले, "महाराज, द्रौपदी ने इस समय जो कुछ कहा है, वह बहुत सुन्दर है। स्त्री का कहा होने के कारण वह उपेक्षा करने योग्य नहीं है। अचरज की बात तो यह है कि आपके पास देवताओं को भी विस्मय में डालनेवाला पुरुषार्थ है, फिर भी शत्रुओं ने आपकी यह दुर्दशा कर दी है। माना इस समय आपके पास शक्ति नहीं है, फिर भी यदि आप शत्रु को जीतने के लिए चेष्टा करें तो प्रजा आपका स्वागत करेगी। शूर-वीरों का सच्चा सहायक पुरुषार्थ है। यदि आप तेरह साल पूरे होने की राह देखें तो राज्य का सुख भोगकर दुर्योधन अवधि के बाद भी आपका राज्य नहीं लौटा-एगा। इसलिए आलस्य छोड़कर शत्रुओं पर विजय पाने का उपाय कीजिये और हम लोगों को आदेश दीजिये। शत्रुओं में ऐसा कौन है जो आपके छोटे

भाइयों के पराक्रम को सह सके।"

भीम की ये बातें सुनकर उसे शांत करते हुए युधिष्ठिर बोले, "भीम, तुमने जो कुछ कहा है वह ठीक है, किन्तु प्रत्येक कार्य सोच-विचारकर करना चाहिए। असमय में क्रोध करना अनुचित है। शत्रु का नाश करने के लिए शांति मे बढ़कर और कोई बढ़िया साधन नहीं है। यदि हम अवधि के बाद नियमपूर्वक युद्ध की घोषणा करेंगे तो सब राजा हमारी सहायता करेंगे। यह समझ लेना कि अधिक समय हो जाने पर दूसरे राजा दुर्योधन के पक्ष में हो जायंगे तुम्हारी भूल है। अहंकारी मनुष्य का साथ समय पड़ने पर सभी छोड़ देते हैं; क्योंकि वे उसके दुर्व्यवहार से मन-ही-मन अप्रसन्न रहते हैं। इसलिए हमारे लिए वनवास की अवधि को शांति के साथ बिताना ही उचित है।"

महाराजा युधिष्ठिर भीम को इस प्रकार समझा ही रहे थे कि अचानक भगवान वेदव्यास वहां आ पहुँचे। उनको देखते ही सबने उनका स्वागत-सम्मान किया। उन्हें ऊंचे आसन पर बिठाया। फिर उनकी आज्ञा पाकर आप भी हाथ जोड़कर उनके सामने बैठ गये।

उसके बाद व्यासजी का गुणगान करते हुए युधिष्ठिर ने बड़ी चतुरता से उनके आने का कारण पूछा।

व्यासजी धृतराष्ट्र की निन्दा और युधिष्ठिर की प्रशंसा करते हुए बोले, "आपके शत्रुओं ने आपके साथ जो बुरा बर्ताव किया है उससे आपका भला ही हुआ है। लेकिन आपका शत्रु, बल और हथियारों में, आपसे बढ़ा हुआ है। आपको उससे बढ़ने का उपाय करना होगा। भीष्म पितामह, कर्ण और द्रोणाचार्य जैसे योद्धा उसके पक्ष में हैं। उनको पराजित करने के लिए दिव्य अस्त्र चाहिए। मैं अर्जुन को एक मंत्र सिखाता हूं। उसके द्वारा वह इन्द्र को प्रसन्न करेंगे और दिव्य अस्त्र प्राप्त करके शत्रुओं पर विजय पायंगे। मेरा इस समय यहां आने का यही उद्देश्य है।" इसके बाद वेदव्यास ने अर्जुन को वह मंत्र सिखाया और बोले, "हे अर्जुन, तुम मेरे कहने के अनुसार शस्त्र धारण करके मुनियों की भांति तपस्या करो। एक यक्ष को मैं तुम्हारे साथ किये देता हूं। वह तुम्हें तपस्या के स्थान पर पहुंचा आवेगा।"

ऐसा कहकर व्यासजी वहां से चले गये और यक्ष वहां आकर उपस्थित हो गया। तब भाइयों से विदा मांग कर अर्जुन उनके साथ चलने को तैयार होने लगे। द्रौपदी ने उस समय एक वीर पत्नी की भांति उन्हें विदा दी। उसके हृदय में वियोग का दुःख तो था, पर सन्तोष भी कम नहीं था। अर्जुन शत्रुओं पर विजय पाने के लिए ही तो तप करने जा रहे थे।

द्रौपदी की बातें सुनकर अर्जुन कुछ उत्तेजित हो उठे। उन्हें शत्रुओं के प्रति क्रोध भी उत्पन्न हुआ और वह अस्त्र-शस्त्र लेकर यक्ष के साथ हिमालय की ओर चल पड़े।

: २ :

शरद ऋतु का सुहावना समय था। मार्ग दिखाता हुआ यक्ष अर्जुन के साथ चला जा रहा था। कहीं कीचड़ का नाम नहीं था। तालाबों में कमल खिले हुए थे। खेतों में अनेक प्रकार के धानों की बालें झूम रही थीं। गांवों के हर घर में फूल खिल रहे थे। अर्जुन शरद् ऋतु की यह सुन्दर शोभा देखकर बड़े प्रसन्न हुए। यह देखकर यक्ष बोला, "हे अर्जुन, यह समय सचमुच बड़ा सुन्दर मालूम होता है। सरोवर और नदियों का जल स्वच्छ हो गया है। आकाश बादलों के न होने से निर्मल दिखाई देता है। मंद-मंद सुगंधित वायु बह रही है। खेतों का जल, हरी लताएं, सफेद कमल और पके हुए धान की पीत कांति से इन्द्रधनुष की शोभा प्रकट हो रही है। हंस कूज रहे हैं। हरिणियां मधुर कंठवाली गोपियों का गाना सुनकर चरना भूल गई हैं।"

इस प्रकार अर्जुन से शरद् ऋतु की शोभा का वर्णन करता हुआ यक्ष हिमालय पर्वत पर आ पहुंचा। यहां आकर उसने कहा, "हिमालय पर धरती, आकाश

और स्वर्ग सबके निवासी रहते हैं। यह रत्नों की खान है। नाना प्रकार के पुष्पों से यह शोभित है। इसके शिखर बहुत ऊंचे और हिम से ढके हुए हैं। इसका मध्य भाग बहुत सुन्दर है। वहां से जाह्नवी आदि सुर-सरिताएं प्रवाहित हो रही हैं। इसका उच्च शिखर आकाश-मंडल को छूने जा रहा है। मानसरोवर आदि पवित्र स्थान यहीं पर हैं। इसी हिमालय पर गहन वन हैं जो बड़े-बड़े वृक्षों और औषधियों से शोभित हैं, जहां हिंसक पशु निर्भय होकर विचर रहे हैं। इसी पर्वत पर भगवती पार्वती ने अपनी अद्‌भुत तपस्या से भगवान शंकर को प्राप्त किया था।

"देखो अर्जुन, यहीं पर कैलास पर्वत है। यहीं भगवान् शंकर अपने गणों के साथ निवास करते हैं। और यह इन्द्रकील पर्वत कैसा मनोरम है! इसकी गुफाएं बड़ी सुन्दर हैं। यह पर्वत इन्द्र को बहुत प्यारा है। यहां के वन बड़े मनोहारी हैं। यहां की मरकत मणि की शोभा के सामने सूर्य की किरणें भी फीकी पड़ गई हैं।"

इस प्रकार वहां की शोभा का वर्णन करता हुआ यक्ष अन्त में बोला, "हे अर्जुन, अब आप शस्त्र धारण करके इसी इन्दकील पर्वत पर तपस्या कीजिये। तपस्या के समय बहुत-सी बाधाएं पैदा होंगी। बिना विघ्न-

बाधाओं के कल्याण होना कठिन है। भगवान शंकर और लोकपाल आपकी सहायता करें !"

इस प्रकार प्यारे और हितकर वचन कहकर यक्ष वहां से चला गया और अर्जुन वहीं इन्द्रकील पर्वत पर रहने लगे।

: ३ :

इन्द्रकील पर्वत की अद्भुत छटा को देखकर अर्जुन बहुत प्रसन्न हुए। तपस्या करने में उनका उत्साह बढ़ने लगा। सांसारिक विषयों से अपने मन को हटाकर और इन्द्रियों को अपने वश में करके वह बहुत कठिन तप करने लगे। उन्होंने शस्त्र धारण किये हुए थे, परन्तु उनका स्वभाव बड़ा सरल था। उन्होंने अपने आचरण से ऋषियों को जीत लिया। उनके मुख पर एक अद्भुत तेज दिखाई देने लगा। उनके सिर की जटाएं बढ़ गईं। धनुष धारण किये उनको तपस्या में लगे देखकर हिंसक पशुओं तथा सर्प आदि जीवों ने हिंसा भाव छोड़ दिया। पवन बहुत ही सुखद और शीतल होकर बहने लगा। पौधे नये पत्तों से हरे-भरे दिखाई देने लगे। आकाश निर्मल हो गया और धूल दूर हो जाने के कारण धरती शांत दिखाई देने लगी।

अर्जुन के तप का ऐसा प्रभाव देखकर वहां के वनचर इन्द्र के पास गये और उन्होंने उनसे अर्जुन की

अद्‌भुत तपस्या का वर्णन किया। वनचरों के मुख से अर्जुन की तपस्या का वर्णन सुनकर इन्द्र हृदय में बड़े प्रसन्न हुए, फिर भी उन्होंने अर्जुन की परीक्षा लेने के लिए अप्सराओं और गन्धर्वों को इन्द्रकील पर्वत पर भेजा। उनकी रक्षा के लिए इन्द्र ने हाथी, रथ, घोड़ों तथा अपने सेवकों को भी जाने का आदेश दिया। आज्ञा पाकर वे सब लोग चल पड़े। मार्ग में बड़ी तेज धूप थी। उनके शरीर से पसीना टपकने लगा। लेकिन जब वे सब मंदाकिनी के समीप पहुंचे तो उन्हें बड़ी शांति मिली। शीतल वायु ने उनका ताप दूर कर दिया। उस समय आकाश का दृश्य भी अद्‌भुत दिखाई देता था। रथों में जुते हुए घोड़े और इन्द्र की सेना सब आकाश-गंगा की भांति ज्ञान पड़ते थे। वे आपस में बातें करते जाते थे कि इन्द्र का काम कैसे किया जायगा। यही सोचते-सोचते वे इन्द्रकील पर्वत पर पहुंचे और गंगा के किनारे की सुरम्य भूमि पर अपने शिविर लगाये।

इन्द्रकील पर्वत की शोभा का वर्णन नहीं हो सकता था। वह बसे हुए सुन्दर नगर की भांति दिखाई देने लगा। हाथियों की जलक्रीड़ा के कारण गंगाजल का रंग पलट गया। अप्सराओं के सौन्दर्य से पर्वत और पेड़ चमक उठे। घूम-घूमकर वे वहां की छटा देखने

लगीं। कहीं ऊंचे से सरिताएं गिर रही थीं, कहीं फूलों से लदी लताओं पर भौंरे गूंज रहे थे। वे फूलों पर मुग्ध हो गईं। इसके बाद वे जलविहार के लिए चलीं। जलाशयों और नदियों में स्नान करते हुए उन्होंने जिस प्रकार क्रीड़ा की, उससे जंगल में मंगल दिखाई देने लगा। जब सायंकाल आया तो सूर्य की लालिमा से पश्चिम दिशा लाल हो गई। धीरे-धीरे अंधकार ने चारों दिशाओं को ढक लिया। वन, उपवन, नदी और पर्वत सब अंधकार में डूब गये। सूर्य के अस्त हो जाने से कमलिनी का मुख मलिन हो गया और वह मुरझा गई।

लेकिन समय कभी एक-सा नहीं रहता। पूर्व दिशा में चन्द्र ने उदय होकर अन्धकार का नाश कर डाला। वह उज्ज्वल हो गई। यद्यपि चन्द्र ने अपनी चांदनी से आकाश को पूर्णरूप से प्रकाशित नहीं किया था फिर भी रात्रि नई बहू की तरह लगती थी, जिसका घूंघट हट गया हो और वह लज्जा के भार से दबी जा रही हो। फिर चन्द्रमा की किरणें चारों ओर छा गई और अप्सराएं विहार करने के लिए निकल पड़ीं। इसी प्रकार उन्होंने सारी रात बिता दी। सवेरा हुआ। बन्दीजन मंगलगान करने लगे। शीतल मन्द सुगन्धित वायु बहने लगी और दिशाएं पक्षियों के कलरव से

मुदित दिखाई देने लगीं।

दिन निकलने पर अप्सराएं अच्छी तरह सज-धज कर उस स्थान पर पहुंचीं, जहां अर्जुन तपस्या कर रहे थे। उन्हें लुभाने के लिए वे तरह-तरह के उपाय करने लगीं। अर्जुन तब गंगा के तट पर तपस्या में लीन थे। यम-नियम का पालन करने से उनके अंग दुबले हो गये थे, तो भी वे अटल थे। उनके शरीर से प्रभा निकल रही थी। उनका वेश मुनियों का था, पर तेज में वह इन्द्र के समान लगते थे। यह देखकर गन्धर्व मृदंग और वीणा बजाने लगे। सारी ऋतुएं एक साथ वहां आ गईं। आकाश में बादलों की काली घटा छा गई। बिजली चमकने लगी। वर्षा से तपोवन गीला हो गया। कोयल की सुरीली ध्वनि होने लगी। मालती के फूल खिल उठे। मलय पवन मन को हरने लगा। बारी-बारी से हरेक ऋतु ने अपना-अपना प्रभाव दिखाया, पर अर्जुन का मन तनिक भी तप, ध्यान और वन्दना से नहीं डिगा। गन्धर्वों के वीणा-वादन का भी अर्जुन पर कोई प्रभाव नहीं पड़ा। अब अप्सराएं अपने रूप-जाल में फंसाने के लिए अर्जुन के समीप जा पहुंचीं। वे अपने नाचगान व हावभाव से अर्जुन का तप भंग करने की कोशिश करने लगीं, किन्तु उन्हें भी सफलता नहीं मिली। तपस्वी अर्जुन के तप-साधन के सामने उन

अप्सराओं तथा गन्धर्वों के सारे प्रयत्न असफल हो गये। अन्त में वे सब निराश होकर लौट गये।

: ४ :

गन्धर्वों और अप्सराओं के लौट आने पर इन्द्र स्वयं उस स्थान पर आये जहां अर्जुन तपस्या कर रहे थे। उन्होंने बूढ़े मुनि का वेश धारण किया था, लेकिन उनका तेज उसी तरह चमक रहा था जैसे सूरज बादलों से ढका हुआ हो। उन्हें अपने सामने देखकर अर्जुन बहुत प्रसन्न हुए और उनका सत्कार कर उन्हें उच्च आसन पर बिठाया। थोड़ी देर आराम करने के बाद इन्द्र ने अर्जुन को उपदेश देते हुए कहा, "हे अर्जुन, तुमने अच्छा किया जो युवावस्था में तप कर रहे हो। मैं तो इस उम्र में भी संसार में फंसा हुआ हूं। तुम्हारे तप से मैं अत्यन्त प्रसन्न हूं। तुम सुन्दर हो, गुणी भी हो। यह सोने में सुगन्ध जैसा है। संसार के प्राणियों को जन्म लेने में कितना दुख होता है। सारा जीवन विपत्तियों से भरा हुआ है। फिर मृत्यु अपना विकराल मुँह फैलाये सामने खड़ी रहती है। इसलिए सज्जन लोग मुक्ति की इच्छा से ही तपस्या करते हैं। तुम्हारा मन शुद्ध है। तुम भी ऐसा ही कर रहे हो, लेकिन एक बात समझ में नहीं आती। तुमने योद्धा का वेश क्यों धारण किया है? यह शांति का समर्थन नहीं करता।

जान पड़ता है, तुम्हारी तपस्या मोक्ष प्राप्ति के लिए नहीं है। तुम्हें यदि लक्ष्मी की चाह है तो वह चंचला है। शत्रुओं पर विजय प्राप्त करने के लिए तप कर रहे हो तो आत्म-पीड़ा की भांति पर-पीड़ा भी उचित नहीं है। हां, यदि तुम चाहो तो मुक्ति बड़ी आसानी से मिल सकती है। सो तुम युद्ध का ध्यान छोड़ दो। अगर जीतना है तो इन्द्रियों को जीतो।"

इस प्रकार शस्त्र छोड़ देने का उपदेश देकर इन्द्र जब चुप हो गये तो अर्जुन उनसे विनयपूर्वक बोले, "भगवन, आपने जो बातें कहीं हैं वे उचित ही हैं। आपका वचन वेदवचन के समान है। उसके बारे में तर्क की आवश्यकता नहीं है; परन्तु जान पड़ता है कि आप मेरे तप का उद्देश्य नहीं जानते। इसलिए मुनि की भांति उपदेश दे रहे हैं। मैं आपके उपदेश का असली पात्र नहीं हूं। मैं क्षत्रिय हूं। मैं पांडु और कुन्ती का पुत्र अर्जुन हूं। हमारे चचेरे भाई दुर्योधन ने हम लोगों का सर्वस्व छीन लिया है। अपने बड़े भाई युधि-ष्ठिर की आज्ञा से इस दुस्तर तप को पूर्ण करने के लिए मैं यहां आया हूं। भगवान् वेदव्यास ने मुझे आदेश दिया है कि मैं अस्त्र-शस्त्र धारण कर इस पर्वत पर तपस्या कर देवताओं के राजा इन्द्र को प्रसन्न करूं। युधिष्ठिर दुर्योधन के साथ कपट-जुए के खेल में अपना

सर्वस्व हारकर द्वैतवन में निवास कर रहे हैं। वह मेरे विरह में मेरे अन्य भाइयों तथा द्रौपदी के साथ अत्यन्त दुखी हो रहे हैं। मैं आपसे अधिक क्या कहूं, शत्रुओं ने हमारे शरीर का वस्त्र भी उतरवा लिया है। बड़े दुःख की बात तो यह है कि भरी सभा में उन्होंने द्रौपदी का अपमान किया। दुर्जनों के साथ मैत्री करना भी बुरा होता है। उसका परिणाम यह हुआ कि अजातशत्रु युधिष्ठिर की भी दुर्योधन आदि से शत्रुता बढ़ गई। इस संसार में मानहीन प्राणियों को लोग तिनके से भी तुच्छ समझते हैं। इसलिए मैं सुख की अभिलाषा नहीं रखता। बुढ़ापे और मृत्यु के भय से मोक्ष भी नहीं चाहता। मैं तो शत्रुओं पर विजय पाने के लिए ही यह तप कर रहा हूं। मेरे बड़े भाई युधिष्ठिर अपनी प्रतिज्ञा के अनुसार शत्रुओं पर विजय पाने की अभिलाषा में मेरी ओर टकटकी लगाये बैठे हैं। मैं उनकी आज्ञा का उल्लंघन कदापि नहीं करना चाहता। मेरी प्रतिज्ञा है कि या तो मैं इस पर्वत पर अपने प्राणों का अन्त कर दूंगा या अपने इष्टदेव इन्द्र की आराधना करके शत्रुओं पर विजय प्राप्त करूंगा।"

यह सुनकर इन्द्र ने अपना असली रूप प्रकट कर दिया और अर्जुन को छाती से लगा लिया। उन्होंने अर्जुन को भगवान शंकर की आराधना करने का

उपदेश दिया। कहा, "जब तुम शंकर को प्रसन्न कर लोगे तो मैं तुम्हें ऐसी शक्ति दूंगा जो शत्रुओं का मुंह फेर देगी।" इस प्रकार कहकर वे वहां से चले गए।

इन्द्र की बात मानकर अर्जुन निर्भय होकर भगवान शंकर की आराधना के लिए कठिन तपस्या करने लगे। इस प्रकार इन्द्रियों को वश में करके उपवास तथा व्रत करते हुए, सूर्य के सामने एक पैर से खड़े होकर, अर्जुन को तपस्या करते कई वर्ष बीत गए। उनका शरीर दुर्बल हो गया, किन्तु मन की शक्ति बढ़ती गई। उनका मुख सूर्य की तरह शोभा वाला हो गया। सिर की जटाएं चमकने लगीं। धनुष को तानकर तपस्या करते हुए रुद्र की भांति अर्जुन ने पर्वत पर निवास करने वाले वनचरों, तपस्वियों और मुनियों को विस्मय में डाल दिया।

अर्जुन के तप के प्रभाव को मुनिगण भी जब सहन न कर सके तब वह स्वयं भगवान शंकर की शरण में कैलास पर्वत पर पहुंचे और उनकी स्तुति करने लगे। स्तुति सुनकर शंकर उनके सामने प्रकट हुए। तब मुनियों ने अर्जुन की भीषण तपस्या का वर्णन इस प्रकार किया : "भगवान सूर्य की किरणों की भांति एक तेजस्वी पुरुष इन्द्रकील पर्वत पर तप कर रहा है। वह तपस्वी होता हुआ भी धनुष-बाण, कवच,

खड्ग, जटा, वल्कल और मृगचर्म धारण किये हुए है। जब वह चलने लगता है तब पृथ्वी कांप उठती है। इसलिए हम लोगों को संदेह हो रहा है कि क्या वह अपने तप के तेज से सारे विश्व को जीत लेना चाहता है ? या एक ही बार में संहार करना चाहता है ? या मुक्ति चाहता है। हम लोग उसके तेज को सहन करने में असमर्थ हो रहे हैं। भगवान, आप सब कुछ जानते हुए भी क्यों उसकी उपेक्षा कर रहे हैं ? आप ही हम सबकी रक्षा कर सकते हैं। इसलिए हम आपकी शरण में आये हैं।"

भगवान शंकर ऋषियों की बात सुनकर गंभीरतापूर्वक बोले, "तपस्वियो, यह तेजस्वी पुरुष बदरिकाश्रम तपोवन में रहनेवाले भगवान नारायण का अंश है। यह सारे संसार को दुःख देनेवाले प्रबल शत्रुओं को जीतने की अभिलाषा से मुझे प्रसन्न करने के लिए तप कर रहा है। यह और कृष्ण दोनों ब्रह्मा की प्रार्थना से असुरों का नाश करने के लिए मनुष्य-रूप में रहते हैं। देखिये, अर्जुन को देवकार्य में लगे हुए देखकर मूक नाम का दानव वाराह का रूप धारण कर छल से उसे मारने की तैयारी कर रहा है। इसी समय मैं किरात-रूप धारण करके बाण चलाकर उसका वध करूंगा। अर्जुन भी वाराह को मारने के लिए मेरे

साथ ही बाण चलायगा। उस शिकार के लिए मुझसे झगड़ा करेगा। उस समय मेरे साथ घोर संग्राम करते हुए अर्जुन के पराक्रम को आप लोग देखियेगा।"

इस प्रकार तपस्वियों को समझाकर शिवजी ने किरात का वेश धारण किया। किरात सेना भी तैयार होकर सिंह के समान गरजने लगी। शिव के आदेशानुसार वह शिकार के बहाने चारों ओर से उस ओर चल पड़ी जहां अर्जुन तपस्या कर रहे थे। सब ओर भगदड़ मच गई। स्वयं किरात-वेषधारी शिवजी सबको भयभीत करते हुए अर्जुन के आश्रम के समीप जा पहुंचे। उसी समय मूक दानव वाराह के वेष में अर्जुन की ओर धावा करता हुआ आगे बढ़ रहा था। शिवजी भी किरातों के साथ उसके पीछे चल पड़े।

: ५ :

अर्जुन ने अत्यन्त भयंकर शरीरवाले और पर्वत को खंडहर करने में समर्थ बड़े-बड़े दांतोंवाले वाराह-रूप धारण किये हुए उस मूक दानव को दूर से आते हुए देखा। उसे देखते ही वह तर्क-वितर्क में पड़ गये। वह सोचने लगे कि यह वाराह अपने कठोर दांतों से वृक्षों की जड़ को उखाड़ता तथा पर्वत को तोड़ता हुआ इधर ही आक्रमण करने के लिए क्यों आ रहा है? यद्यपि इस तपोवन के हिंसक पशुओं ने अपनी

हिंसा-वृत्ति त्याग दी है, फिर भी यह मेरी ओर क्यों दौड़ा आ रहा है ? कहीं दैत्य या दानव लोग ही तो वाराह-रूप धारण करके मुझ पर आक्रमण करना नहीं चाहते । अवश्य ही वाराह के रूप में यह कोई दानव है; क्योंकि इसे देखकर मेरा मन क्षुब्ध हो रहा है। मेरे जैसे तपस्वी का यहां कोई शत्रु नहीं है, यह भी समझना भूल है; क्योंकि अकारण द्वेष करनेवाले दुर्जनों के लिए कोई भी कार्य असंभव नहीं है । इस-लिए यह कोई माया-रूपधारी दानव ही जान पड़ता है । यह या तो दुर्योधन का भेजा हुआ है या अश्वसेन, जिसके भाईबन्द खांडव वन में जल गये थे, बदला लेने आया है; या वह भीम का कोई शत्रु है । जो कोई भी हो मैं इस हिंसक पशु को अवश्य मारूंगा ।

यह सोचकर अर्जुन गांडीव धनुष पर बाण चढ़ा-कर उस वाराह को मारने के लिए तैयार हो गये । उनको तैयार देखकर शिवजी भी पिनाक धनुष पर प्रत्यंचा चढ़ाकर वाराह को मारने के लिए उसके पीछे अग्रसर हुए । शिवजी ने तुरन्त वाराह को लक्ष्य करके बाण चलाया । वाराह आहत होकर गिर पड़ा और बाण पृथ्वी में घुस गया । अर्जुन ने भी उसी समय वाराह को मारने के लिए बाण छोड़ा । वह बाण भी जीव-जंतुओं को व्यथित करता हुआ अत्यंत तेजी से

वाराह के शरीर को छेदकर पार हो गया। इस प्रकार दोनों के बाण लगते ही वाराह कटे वृक्ष की भांति गिरकर धराशायी हो गया। उसके बाद अर्जुन अपने बाण को लेने के लिए उस वाराह की ओर चल पड़े। वहां जाकर उन्होंने चिंघाड़ मारकर मरते हुए वाराह को देखा और यह भी देखा कि शिवजी का भेजा हुआ एक किरात वहां उपस्थित है।

किरात ने अर्जुन को प्रणाम करके कहा, "भगवन, आपका तप बहुत ही उज्ज्वल और कीर्ति को बढ़ाने वाला है। तपस्वी होते हुए भी आप हिमालय की भांति स्थिर तथा इन्द्र की भांति राजेन्द्र जान पड़ते हैं। आप ऐसे तपस्वियों के लिए मोक्ष भी दूर नहीं है, विजयप्राप्ति में तो कोई संदेह ही नहीं है। ऐसी स्थिति में आप मेरे स्वामी के बाण को लेने का प्रयत्न न करें, क्योंकि उनके ही बाण से इस वाराह की मृत्यु हुई है। महात्मा सदाचार का पालन करते हैं। आप ही यदि उसका पालन न करेंगे तो सदाचार ही न रह जायगा। मेरी समझ में तो आप धोखे से दूसरे के बाण को लेने के लिए तैयार हो गये हैं। दूसरे के द्वारा मारे गये पशु का मारना ही आपके लिए लज्जाजनक है। यदि मेरे स्वामी इसे न मारते तो यह आपको मार डालता। मेरे स्वामी किरातपति के सिवा दूसरा

कोई भी इस भयंकर वाराह को नहीं मार सकता था। इसलिए आपको किरातपति से लोहा लेना उचित नहीं है। इससे आप समूल नष्ट हो जायंगे। आप उनसे मैत्री कीजिये। यदि आप विनय के साथ याचना करेंगे तो वह बाण ही क्या, समस्त पृथ्वी को जीतकर आपको समर्पित कर सकते हैं। उनके पास से कोई भो याचक हताश होकर अभी तक नहीं लौटा है। हां, अभिमान करेंगे तो आप कुछ न ले सकेंगे। आप सज्जन हैं। मेरे स्वामी ने आपको क्षमा कर दिया। आप उनका बाण लौटा दीजिये। उनसे मित्रता करने से आपके सब मनोरथ पूरे हो जायंगे।"

किरात की ये बातें सुनकर अर्जुन आवेश में आ गये। फिर भी वह गंभीर और शांत स्वर में बोले, "आपकी वाणी बड़ी प्रिय और मधुर है। कुछ लोग केवल शब्दाडंबर को ही अपनाते हैं। कुछ अपने हृदय के भावों को स्पष्ट करने में चतुर होते हैं और कुछ गूढ़ अर्थ वाली वार्ता में पटु। किन्तु आपमें ये सभी गुण हैं। किरात होकर भी आप अपनी बोलने की विलक्षण प्रतिभा के बल से मुझे ठगना चाहते हैं। जब आपको उचित-अनुचित का इतना ध्यान है तो आपने अपने स्वामी को क्यों नहीं रोका ? हो सकता

है कि उन्होंने वाराह पर बाण चलाया हो, किन्तु वह बाण कहीं इधर-उधर छिप गया होगा। आपको मुझसे बाण मांगने को आवश्यकता नहीं, बल्कि पहाड़ पर उसे ढूंढ़ना चाहिए। मैं सदाचार का पूर्ण रूप से पालन करनेवाला हूं। खांडव वन को जलाते समय अग्नि ने मुझे अनगिनत बाण दिये थे। मुझे देवताओं के बाणों की कोई आवश्यकता नहीं, फिर किरात के बाण को लेकर मैं क्या करूंगा। मृग-आदि तथा हिंसक पशुओं को जो मारता है वही उसका अधिकारी होता है। इसलिए वाराह मारनेवाले को ही वाराह मिलना चाहिए। इस संबंध में आपके स्वामो को ही झूठा अभिमान छोड़ देना चाहिए। इस वाराह को आपके स्वामी और मैंने एक साथ ही मारा है। यह कैसे मान लिया जाय कि उनके ही बाण से यह मरा है ? यदि मुझे बचाने के लिए उन्होंने वाराह पर बाण चलाया था तो उनका उद्देश्य पूरा हो गया। अब उन्हें बाण का लालच क्यों हो रहा है ? तुमने कहा है कि बाण मांग लीजिए। स्वाभिमानी व्यक्तियों को दूसरे से याचना करना शोभा नहीं देता। जान पड़ता है कि आपके स्वामी मुझपर झूठा आरोप लगा रहे हैं। वह मेरे मित्र कैसे हो सकते हैं ! यदि वह बाण लेने के लिए यहां आयेंगे तो उनकी वही दशा होगी

जो सांप की मणि लेने वाले की होती है।

अर्जुन की बात सुनकर किरात शिवजी के पास पहुंचा। वह अर्जुन पर बहुत प्रसन्न थे, किन्तु फिर भी उन्होंने किरातों की सेना को आक्रमण करने का आदेश दे दिया। वह स्वयं पिनाक धनुष लेकर सेना का संचालन कर रहे थे। किरातों की सेना गरजती हुई अर्जुन की तपोभूमि की ओर बढ़ने लगी। पास पहुंचकर जब सब वीर एक-एक करके बल की परीक्षा कर चुके तब उन्होंने अर्जुन पर एक साथ ही आक्रमण कर दिया। अनेक अस्त्र-शस्त्रों से प्रहार किया गया, किन्तु अर्जुन का बाल भी बांका नहीं हो सका। इसी बीच गांडीव पर प्रत्यंचा चढ़ाकर, प्रलय-काल मचाने वाला रुद्र-रूप धारण कर, अर्जुन किरात सेना पर टूट पड़े। उनकी ओजपूर्ण वाणवर्षा से किरात-सेना इधर-उधर भागने तथा मूर्च्छित होकर पृथ्वी पर गिरने लगी। उनकी वीरता देखकर किरात बड़े आश्चर्य में पड़ गये और उनके वाणों से जंगल के समस्त जीव भयभीत हो गये। देखते-देखते शिवजी की सेना अपने अस्त्र-शस्त्र छोड़कर भाग खड़ी हुई। वह घबराहट के मारे अपने सेनापति किरातपति की ओर भी नहीं देख सकी। कार्तिकेय को पराजित करनेवाले अर्जुन भयभीत सैनिकों के पीछे चल पड़े।

कार्तिकेय ने जब देखा कि किरात सैनिक भागे जा रहे हैं तब वह उन्हें आश्वासन देते हुए बोले, "संग्राम की भूमि को छोड़कर मत भागो ! आपके लिए खेल और युद्ध समान हैं। आपने राक्षसों को पराजित किया है। मनुष्यों की तरह भागना आपको शोभा नहीं देता। इसके पास तो रथ, हाथी, घोड़ा और पैदल सेना तक नहीं हैं, फिर तुम लोग भयभीत होकर क्यों भाग रहे हो ? प्राचीन काल में असुरों के साथ युद्ध करके तुम लोगों ने जो यश प्राप्त किया है वह भी आज तुमने खो दिया।"

इस प्रकार जब कार्तिकेय ने सेना को रोका तो शिवजी भी उनको "मत भागो! मत भागो !" कहकर आश्वासन देने लगे। इस आश्वासन से सेना में जीवन लौट आया। इसके बाद अर्जुन और किरातपति के बीच तुमुलयुद्ध होने लगा। अर्जुन के द्वारा चलाये हुए वाणों को किरातपति ने बड़ी चतुराई से काट डाला। अर्जुन ने भी शिवजी के वाणों का साहस तथा वीरता-पूर्वक सामना किया। आकाश उनके वाणों से भर गया। दोनों वीर एक-दूसरे के वाण काटने लगे। शिवजी अर्जुन की वीरता देखकर हृदय में अत्यंत प्रसन्न थे, इसलिए उन्होंने ऐसे मर्मभेदी वाणों का प्रहार नहीं किया, जिनसे उनका अहित होने की

संभावना थी। अर्जुन शिवजी के वाणों से आहत होकर भी तनिक नहीं घबराये। दोनों ओर का रोमांचकारी युद्ध देखकर महर्षि, देव तथा किरात सब रोमांचित हो उठे।

: ६ :

तपस्वी अर्जुन किरातपति का अद्भुत संग्राम देखकर क्रोध और आश्चर्य से भर उठे। वह सोचने लगे—आश्चर्य है कि इस संग्राम में मतवाले हाथी भी नहीं हैं। अनेक पताकाओं से सजे हुए रथ भी नहीं दिखाई पड़ते। वेग से वायु की भांति उड़नेवाले घोड़ों का भी कहीं पता नहीं है। रणबांकुरे लड़ाकू वीरों की सेना भी कहीं नहीं जान पड़ती। उत्साहवर्धक रणभेरी, दुंदुभि तथा नगाड़ों की तुमुल ध्वनि का भी कहीं आभास नहीं होता। रुधिर की नदियां भी नहीं बह रही हैं। फिर क्यों इस किरात-युद्ध में मेरी शक्ति काम नहीं दे रही है? क्या यह कोई माया है या मेरी बुद्धि पर ही तो पत्थर नहीं पड़ गये हैं। या मैं वह अर्जुन नहीं हूँ, क्योंकि मेरे गांडीव धनुष से निकले वाण जिस प्रकार पहले पराक्रम दिखाते थे वैसा इस समय नहीं दिखा रहे। वास्तव में यह महान योद्धा किरात नहीं जान पड़ता। यह वाण चलाने और फिर उन्हें समेट लेने में अद्भुत और कुशल रणनायक जान

पड़ता है। इसका शरीर अद्‌भुत है। इसके मुख पर कोई विकार नहीं है। इसकी वीरता को भीष्म तथा द्रोणाचार्य जैसे युद्ध-विद्या के आचार्यों से भी बढ़कर कह सकते हैं। अवश्य ही यह कोई देवता या दानव है। इसलिए इसके पराक्रम को दिव्यास्त्र द्वारा ही समाप्त किया जा सकता है।

यह सोचकर अर्जुन ने गांडीव पर प्रस्वापन नामक अस्त्र चढ़ाया। उसके प्रभाव से सारी शत्रु-सेना घोर अंधकार में पड़ गई और भयभीत होकर मूर्च्छित हो गई। कितने ही वीरों के हाथों से तलवारें पृथ्वी पर गिर पड़ीं। उस समय किरात-वेश धारण किये हुए शिव के लालट से तेज की लपटें निकलने लगीं। उसने अन्धकार को दूर कर दिया और किरात-सैनिक मूर्च्छा त्याग फिर युद्ध करने को तैयार हो गये। दिशाएं जगमगाने लगीं। सूर्य की किरणें चमकने लगीं। तब अर्जुन ये प्रस्वापन अस्त्र को विफल जानकर नागपाश अस्त्र को चढ़ाया। नागपाश के प्रभाव से चारों ओर विषधर सांप जिह्वा लपलपाते हुए फैल गये और आकाश में विचरने वाले पक्षी इधर-उधर भाग गये। भगवान शंकर ने नागपाश अस्त्र के प्रभाव को दूर करने के लिए गरुड़ास्त्र का प्रयोग किया। समस्त आकाश-मंडल में गरुड़-ही-गरुड़ दिखाई देने लगे।

गरुड़ों के उड़ने तथा उनके पैरों के प्रभाव से आंधी-सी आ गई, जिससे वृक्ष जड़ से उखड़कर आकाश में उड़ने लगे। देखते-देखते गरुड़ों ने सर्पों को नष्ट कर डाला। अर्जुन ने जब देखा कि नागास्त्र का भी शत्रु पर कोई प्रभाव नहीं पड़ा तो उन्होंने आग्नेय अस्त्र का प्रयोग प्रारंभ कर दिया। आग की भयंकर लपटों से चारों ओर त्राहि-त्राहि मच गई। ऐसा जान पड़ने लगा जैसे यह महा अग्नि थोड़ी ही देर में विश्व को जलाकर राख कर देगी। ऐसी भयंकर अग्नि देखकर भगवान शंकर ने उसे शांत करने के लिए तत्काल वरुणास्त्र का प्रयोग प्रारंभ किया। उससे उसी समय आकाश-मंडल में बादलों की काली घटा छा गई, और मूसलाधार वर्षा होने लगी। थोड़ी देर में आग की लपटें आप-से-आप शांत हो गईं। अग्नि के शांत होने के बाद आकाश तथा पृथ्वी-तल हरा-भरा दिखाई देने लगा।

इस प्रकार शत्रुओं को पराजित करने के लिए अर्जुन ने जिन-जिन अमोघ अस्त्रों का प्रयोग किया, भगवान शंकर ने उनके विरोधी अस्त्रों का प्रयोग कर उन्हें विफल बना दिया। अर्जुन हताश-से होने लगे। उनके दिव्यास्त्र समाप्त हो गये, किन्तु वह शत्रु पर विजय नहीं प्राप्त कर सके। फिर भी धैर्य धारण कर

वह युद्धभूमि में डटे रहे और अपने स्वाभाविक पराक्रम से शत्रुओं पर विजयी होने के लिए प्रयत्न करने लगे। उनकी भौंहें आवेश और क्रोध में तन गईं। धनुष तानकर वाणों की वर्षा करते हुए और सैनिकों को ललकारते हुए अर्जुन का मुखमंडल चमक उठा। किन्तु महेश्वर पर इसका कुछ प्रभाव नहीं हुआ। उनके सारे वाण विफल हो गये। यद्यपि भगवान शंकर अर्जुन की ढिठाई देखकर कुछ अप्रसन्न हुए, किन्तु मन-ही-मन उनके साहस की प्रशंसा करते हुए सोचने लगे—यद्यपि यह शत्रु से पराजित हो गया है, फिर भी अपने पराक्रम को बार-बार प्रकट करता हुआ पीछे हटने को कदापि तैयार नहीं है। वह प्रत्येक दशा में शत्रु को पराजित करने का यत्न कर रहा है। अमोघ अस्त्र अब इसके पास नहीं हैं, फिर भी साधारण वाणों से ही पराक्रम दिखा रहा है।

महेश्वर इस प्रकार तर्क-वितर्क करते हुए अर्जुन से स्वयं युद्ध करने को तैयार हुए। दोनों ओर से फिर घोर संग्राम होने लगा। अर्जुन के वाणों से आहत होकर शत्रुसेना भागने लगी। सेना की यह दुर्दशा देखकर किरातपति क्षुब्ध हो उठे और साक्षात यमराज की भांति भयंकर रूप धारण कर धनुष की टंकार करने लगे। अर्जुन के चलाये हुए समस्त वाणों

को शिवजी ने बीच ही में काट डाला। यह देखकर अर्जुन घबरा गये। लेकिन चैतन्य होकर वह फिर सेना पर वाण-वर्षा करने लगे। शंकर ने भी कुछ क्रुद्ध होकर अर्जुन के वाणों को फिर नष्ट कर दिया। उनके पास अब एक भी वाण नहीं बचा। शिव के मर्मघाती वाणों से अर्जुन अत्यन्त हताश और व्याकुल हो उठे। उनका कवच भी महेश्वर की माया से नष्ट-भ्रष्ट हो गया और उनके शरीर से अद्‌भुत कांति प्रकट होने लगी। उनके शरीर से रुधिर की धारा वह रही थी। फिर भी वह टूटे धनुष से शिवजी से बराबर लड़ते रहे और तनिक भी पीछे नहीं हटे। लेकिन जब वह भी नष्ट हो गया तो वह तलवार लेकर लड़ने लगे, किन्तु शिवजी के प्रभाव से वह भी अर्जुन के हाथ से छूटकर गिर पड़ी। अर्जुन खाली हाथ हो गये, लेकिन इस दुर्दशा पर भी उन्हें क्रोध न आया। उन्होंने फिर पत्थरों की वर्षा करनी प्रारंभ की, किन्तु शिवजी ने उसका भी निवारण कर दिया। अन्त में अर्जुन शिव से बाहुयुद्ध करने का निश्चय करके उनकी ओर दौड़ पड़े।

: ७ :

शिव के सामने पहुंचकर अर्जुन ने उनके वक्ष-स्थल पर अपनी भुजाओं से प्रहार किया। शिवजी

ने भी निषंगसहित धनुष को दूर फेंककर लौह-मुग्दर के समान अपनी मुष्टियों से अर्जुन को मारा। पर्वत की कंदराएं मुष्टिप्रहारों की ध्वनि से गूंज उठीं। शंकर की छाती पर घावों से रुधिर बह रहा था। वह सन्ध्या के सूर्य की तरह शोभित थे। उनकी छाती पहाड़ की तरह थी। अर्जुन की मुष्टियां जब उससे टकराईं तो उनमें दर्द होने लगा। शंकर ने फिर मुष्टि-प्रहार किया तो अर्जुन के नेत्रों के सामने अंधकार छा गया और वह मदोन्मत्त की भांति लड़खड़ाने लगे। इससे उनकी क्रोधाग्नि और भी भड़क उठी। उन्होंने बड़े वेग से समीप जाकर बलपूर्वक अपनी दोनों भुजाओं से शंकर की दोनों भुजाएं पकड़ लीं। शंकर और अर्जुन दोनों रणबांकुरे थे। उन्हें अपनी-अपनी भुजाओं पर अभिमान था। दोनों में परस्पर पर्वत को कंपानेवाला मल्लयुद्ध होने लगा।

मल्लयुद्ध के समय किरात-सेना के सैनिकों को यह निर्णय करना बड़ा कठिन हो गया कि कौन अर्जुन है और कौन शंकर? नीचे अर्जुन है अथवा भगवान शंकर? इन्द्रकील पर्वत भी शंकर तथा अर्जुन का भार सहन करने में असमर्थ हो गया। वह विचलित होकर हिलने-डुलने लगा। दोनों मल्ल-योद्धा हाथ-पैर के बंधन से मुक्त होकर भुजाओं पर ताल ठोंकते

हुए उछल रहे थे। उनके पदाघातों से नदियों के तट गहराने लगे। भगवान शंकर ने वेगपूर्वक उछलकर ज्योंही अर्जुन को फिर पटकना चाहा, अर्जुन ने अपनी दोनों भुजाओं से उनके चरण पकड़ लिये। आशुतोष उन्हें उठाकर पृथ्वी पर फेंकना चाहते थे, लेकिन चरण पकड़ने से उनका हृदय गद्‌गद हो गया। उन्होंने अर्जुन को तत्काल गले से लगा लिया।

इसके बाद भगवान आशुतोष किरात-वेश त्याग कर अपने असली रूप में प्रकट हो गये। यह देखकर अर्जुन गद्‌गद हो उठे। उन्होंने साक्षात भगवान शिव को प्रणाम किया। तत्काल शंकर की महिमा से वह अपने अपूर्व वेश में, गांडीव, कवच तथा चर्म आदि सहित सुशोभित होने लगे। उन्हें बड़ा आश्चर्य हुआ। मेघों ने जलवृष्टि प्रारंभ कर दी। रंग-बिरंगे मंदार-पुष्पों की वर्षा होने लगी। आकाश निर्मल हो गया, बिना बजाये नक्कारों की गंभीर ध्वनि सर्वत्र आकाश में गूंज उठी। इन्द्र, वरुण, यम, कुबेर आदि आठों लोकपाल रत्नजटित विमानों पर बैठकर आकाश में विचरण करते हुए शिव की स्तुति करने तथा अर्जुन को आशीर्वाद देने लगे। शिव के गण भी अर्जुन की प्रशंसा करने लगे।

अपनी तपस्या को पूर्ण समझकर अर्जुन बड़े सन्तुष्ट

हुए और भगवान की स्तुति करने लगे, "भगवान्, लोग जबतक आपके सामने नतमस्तक नहीं होते तबतक उन पर अनेक प्रकार की विपत्तियां आती हैं। बिना आपकी शरण में आये न तो अनिष्ट की निवृत्ति होती है और न इष्ट की प्राप्ति। लोग दान-आदि कर्म करते हुए मुक्तिप्राप्ति के लिए आपकी आराधना करते हैं, किन्तु आप निःस्वार्थ भाव से उनकी सेवा का फल प्रदान करते हैं, यह केवल आपकी दया है। इसमें आपका कुछ भी स्वार्थ नहीं है। मनुष्य भक्ति के साथ आपका स्मरण करके भवबन्धन से मुक्त हो जाता है। आपका ओढ़ने का वस्त्र रोमयुक्त गजचर्म है, मणिधर भीषण सर्प आपका कटिभूषण अर्थात् करधनी है। आप मनुष्य के कपालों की माला धारण करते हैं। चिता की राख आपके मस्तक पर लगी रहती है। ये वस्तुएं और चन्द्रमा की कला सब समान शोभा पाती हैं। वास्तव में आपकी कोई शारीरिक रूपरेखा नहीं है, परन्तु आप न जाने किस प्रकार स्त्री और पुरुष दोनों प्रकार का शरीर धारण किये हुए हैं। विरुद्ध वेश-भूषा होने पर भी आप में रमणीयता पाई जाती है। इससे अधिक आश्चर्य की बात और क्या हो सकती है! हे देव, आप चराचर प्राणियों के संहारकारी हैं। आपकी कृपा से संपूर्ण

संसार जीवित है। आप पंच महाभूतों के कारण पर-माणु के भी कारण हैं। हे नाथ, अब मुझे अभीष्ट सिद्धि प्रदान कीजिये। मेरे अपराधों को क्षमा कीजिये। आज की पावन घड़ी की बाट मैं वर्षों से देख रहा था। भगवान्, आप मुझे ऐसा अमोघ अस्त्र प्रदान कीजिये, जिसका प्रयोग करके मैं बड़े भाई युधि-ष्ठिर के शत्रुओं पर पूर्ण विजय प्राप्त कर सकूं।"

आशुतोष शिव ने इस प्रकार स्तुति करते हुए अर्जुन को सान्त्वना दी और शत्रुओं पर पूर्ण विजय प्राप्त करने वाला 'पाशुपत' नामक महान अस्त्र प्रदान किया। साथ ही धनुर्वेद की शिक्षा भी देने का प्रबन्ध किया। धनुर्वेद साक्षातरूप में वहां उपस्थित हुए। उन्होंने शिव की प्रदक्षिणा की और अर्जुन के पास चले गए। अर्जुन की अभिलाषाएं पूर्ण हो गईं। धनुर्वेद के जाने के बाद इन्द्र आदि देवताओं ने भी आकर विजय-प्राप्ति के कई अमोघ अस्त्र अर्जुन को प्रदान किये और उसकी स्तुति करने लगे। शंकर भगवान ने कहा, "जाओ, शत्रुओं पर विजय प्राप्त करो!"

इसके बाद शंकर के चरणों में प्रणाम करके और देवताओं की प्रशंसा प्राप्त करते हुए अर्जुन घर की ओर लौट चले। वहां पहुंचकर उन्होंने अपने बड़े भाई धर्मराज युधिष्ठिर को प्रणाम किया।

शिशुपाल-वध

: १ :

एक बार श्रीकृष्ण अपने पिता वसुदेवजी के घर निवास कर रहे थे कि उसी समय उन्होंने ब्रह्मा के पुत्र नारदमुनि को आकाश से उतरते हुए देखा। एकाएक वह उन्हें पहचान न सके। सोचने लगे कि यह चारों ओर फैला हुआ तेज क्या है जो आकाश से सीधा नीचे की ओर गिरता चला आ रहा है! पहले तो उन्होंने उसे 'तेज-पुंज' समझा। फिर जब वह कुछ पास आ गया तो देखा कि वह कोई 'शरीरधारी' है; और पास आने पर उसके अंग साफ दिखाई देने लगे। वह समझ गये कि यह तो कोई 'पुरुष' है। अंत में स्पष्ट हो गया कि वह नारद हैं।

नारद की जटाएं कमल के केसर की तरह भूरे रंग की थीं। उनका रंग शरत् ऋतु के चंद्रमा के समान गोरा था। वह ऐसे दिखाई दे रहे थे जैसे बर्फीले स्थानों पर उगी हुई और पुरानी पड़ जाने के कारण

पीली बेलों से शोभित हिमालय। वह काले रंग की मृगछाला ओढ़े हुए थे, जिसे भूरे रंग की मूंज की मेखला से बांध रखा था। जनेऊ सुनहले रंग का था। गले में स्फटिक की माला थी और वह अपनी 'महती' नाम की वीणा को बारबार देख रहे थे।

उन्हें पहचान कर श्रीकृष्ण अपने आसन से उठ खड़े हुए और विधिपूर्वक पूजा करके उन्हें बड़े आदर के साथ बिठाया। महर्षि ने भी उन्हें आशीर्वाद दिया और अपने कमंडल से लेकर उनपर जल छिड़कने लगे। उस जल को श्रीकृष्ण ने सिर झुका कर ग्रहण किया। वह सारे तीर्थों का जल था। महर्षि नारद ने श्रीकृष्ण की बड़ी प्रशंसा की। इसके बाद श्रीकृष्ण बोले, "आपका दर्शन करके मैं कृतार्थ हो गया। आपका आना मेरे लिए गौरव का कारण है। यद्यपि आपको किसी बात की चाह नहीं है, फिर भी क्या मैं आपके आने का कारण जान सकता हूं?"

इस पर महर्षि नारद पुनः श्रीकृष्ण की प्रशंसा करते हुए बोले, "मैं इंद्र का संदेशा लेकर आया हूं, उसे सुनिए। दिति के हिरण्यकशिपु नाम का एक पुत्र था। उसने सब देवताओं को पराजित कर दिया था। वह तीनों लोकों में इच्छानुसार घूमता था। आपने तब नृसिंह रूप धारण करके उसका वध किया था।

उसके बाद वही दैत्य रावण के रूप में पैदा हुआ। वह बड़ा साहसी था और उसने शिवजी से वर पाया था। वह बार-बार देवताओं को पराजित करता, उन्हें लूटता और तरह-तरह से परेशान करता था। इंद्र उसके डर से पहाड़ों में छिपा रहता। विष्णु का चक्र, वरुण का नागपाश अस्त्र, कोई उसका बाल बांका न कर सका। उसने कुबेर का पुष्पक विमान छीन लिया। उसने यम के भैंसे के सींग उखाड़ डाले। यही नहीं, उसने गणेशजी का भी एक दांत उखाड़ दिया था। चन्द्र, वायु, अग्नि सब उसके सेवक थे। वही रावण यह जानकर भी कि आपने ही रामरूप में जन्म लिया है, सीता-हरण करने से नहीं चूका। तब आपने समुद्र पर पुल बांधकर उसे मारा था।

वह रावण अब शिशुपाल के रूप में पैदा हुआ है। बचपन में उसके चार हाथ और तीन नेत्र थे। वह बड़ा तेजस्वी और राजाओं से कर लेने वाला है। उसे अपने बल पर बड़ा घमंड है। उसी घमंड के कारण वह दुनिया को परेशान कर रहा है। उसे आप मार डालें।"

इंद्र का संदेशा देकर जब नारदजी जाने के लिए उठे तो श्रीकृष्ण ने कहा, "नारदजी, ऐसा ही करूंगा।"

: २ :

श्रीकृष्ण शिशुपाल पर आक्रमण करने के लिए जाना ही चाहते थे कि राजसूय-यज्ञ में आने के लिए उन्हें महाराज युधिष्ठिर का निमंत्रण मिला। वह संशय में पड़ गये कि किधर जाऊं। अंत में इस बात का निश्चय करने के लिए वह अपने चाचा उद्धव और बड़े भाई बलराम के साथ सभा-भवन में पहुंचे। उन्होंने अपने संशय को उनके सामने रखते हुए कहा, "युधिष्ठिर के सब दिशाओं को जीतनेवाले भीम, अर्जुन आदि भाई हैं। वह हमारे बिना भी यज्ञ कर सकते हैं। लेकिन हमें बढ़ते हुए शत्रु की उपेक्षा नहीं करनी चाहिए। पंडितों ने बढ़ते हुए रोग और शत्रु को एक जैसा माना है। मैं इस बात से दुःखी नहीं हूं कि शिशुपाल ने मेरे साथ बुरा बर्ताव किया है, किंतु वह सबको पीड़ा देता है, यह बात मुझे बहुत दुःख पहुंचाती है। मेरा यही विचार है। अब आप अपनी राय दें।"

यह कहकर श्रीकृष्ण बैठ गये। उनके बाद शिशुपाल के अपकारों को याद करते हुए और उसके दुःख से अपने होठों को कंपाते हुए बलराम उठे। क्रोध के कारण उनका शरीर लाल हो उठा था और उस पर पसीने की बूंदें चमक आई थीं। उन्होंने कहा,

"मेरी राय में कृष्ण ने जो कुछ कहा है उसीके अनुसार शीघ्र काम करना चाहिए। उन्होंने संक्षेप में बहुत कुछ कहा है। उसका अर्थ बड़ा गहरा है। तेजस्वी पुरुष शत्रुओं को जड़मूल से मिटाये बिना उन्नति नहीं करते। सूरज अंधेरे को बिल्कुल मिटाकर ही आगे बढ़ता है। जबतक एक भी शत्रु बाकी है, मनुष्य को सुख नहीं मिल सकता।"

फिर उसके अपकारों को गिनाते हुए उन्होंने कहा, "जो शत्रु बार-बार बड़े-बड़े अपराध करता है, उसे कौन क्षमा कर सकता है? वह क्रुद्ध है। उससे संधि की बात करना उसे और भी क्रुद्ध करना है। इसलिए आप इंद्रप्रस्थ न जायं, बल्कि शिशुपाल पर आक्रमण करें। सभी अपना स्वार्थ साधते हैं। युधिष्ठिर यज्ञ करें, इंद्र स्वर्ग का पालन करें, सूरज जगत को तपाता रहे। और हम शत्रुओं का नाश करें।

बलराम की ये बातें सुनकर श्रीकृष्ण ने उद्धव को बोलने का इशारा किया। उद्धव उठे और शांत भाव से बृहस्पति के समान बोले, "आप शिशुपाल को अशक्त समझकर उसका अपमान न करें। ऐसा न समझें कि वह अकेला है, इसलिए आसानी से जीता जा सकता है। वह अकेला नहीं है। बाणासुर, कालयवन, शाल्व, रुक्मि, द्रुम आदि अनेक राजा उसके

साथ हैं। जैसे छोटी-सी नदी महानदी के साथ मिलकर समुद्र पहुंच जाती है, उसी तरह छोटा-सा मनुष्य बड़ी सहायता पर अपना काम सिद्ध कर लेता है। आपके आक्रमण करते ही उसके मित्र और आपके शत्रु सब उसकी ओर हो जायंगे। इस प्रकार उत्तेजित होकर वे राजसूय-यज्ञ में विघ्न डालेंगे। और आप सबसे पहले युधिष्ठिर के शत्रु बन जायंगे। युधिष्ठिर ने आपको इसलिए बुलाया है कि आपके कंधे बहुत बोझ उठा सकते हैं। शत्रु को तो बाद में वश में किया जा सकता है, परन्तु मित्र का मन एक बार खराब हो जाय तो फिर, सब कुछ उसका चाहा करने पर भी, वह कठिनता से ठीक होता है। आपने अपनी बुआ से यह प्रतीज्ञा की थी कि मैं तुम्हारे पुत्र के सौ अपराध क्षमा करूंगा। अभी वह पूरे नहीं हुए हैं, इसलिए भी आपको रुकना चाहिए। तब तक आप गुप्तचरों से उसकी शक्ति का पता लगायें। आपके गुप्तचर आपकी ओर के राजाओं को आपका संदेश देकर युधिष्ठिर की राजधानी में पहुंचा देंगे। वहां युधिष्ठिर आपके प्रति विशेष भक्ति प्रकट करेंगे ही। यह देखकर शत्रु राजा आपसे और भी शत्रुता करने लगेंगे। इस प्रकार आपको अपनी ओर से युद्ध करने की जरूरत नहीं रहेगी। वे स्वयं युद्ध शुरू करेंगे और जब युद्ध शुरू

हो जायगा, तो वे दुर्बल पक्ष वाले आपके प्रताप की आग से पतिंगों की तरह जल मरेंगे।"

उद्धव की ये अर्थ-भरी बातें सुनकर श्रीकृष्ण बहुत प्रसन्न हुए और अपने आसन से उठकर खड़े हो गये।

: ३ :

इसके बाद युद्ध का विचार त्याग कर श्रीकृष्ण इंद्रप्रस्थ की ओर चल पड़े। तब उनकी शोभा देखते ही बनती थी। दासों ने उनके मस्तक के ऊपर पूनम के चंद्र के समान सुन्दर श्वेत छत्र लगाया हुआ था। वे श्वेत रंग के ही चंवर डुला रहे थे। उसके मुकुट में नाना रंग की अनेक मणियां जड़ी हुई थीं। उन्होंने कानों में मरकत मणिवाले चमकदार कुंडल पहने हुए थे। भुजाओं पर अंगद शोभा दे रहे थे। हाथों में पद्मराग मणियों से जड़े हुए कड़े थे। गले में मोतियों की माला और कौस्तुभ-मणि पहन रखी थी। कमर में भी मोतियों की माला बंधी हुई थी, जो पैरों तक लटक आई थी। शरीर उनका इंद्रनील मणि के समान नीला था। वस्त्र पीले थे। इस कारण उनकी शोभा यमुना के उस रंग-बिरंगे जल के समान हो रही थी, जिस पर कमलों का पराग फैला हुआ हो।

उनके दाहिने हाथ में सुदर्शन चक्र था। शत्रुओं के शरीरों को नाश करने में कुशल उनकी गदा

कौमोदकी, खंग नंदक और सींगों का बना हुआ धनुष, ये सब ही उनके पास थे। पांचजन्य शंख की ध्वनि सुनाई दे रही थी और वह शीघ्र चलनेवाले पुष्परथ पर चन्द्रमा की तरह शोभित हो रहे थे। जब वह रथ पर बैठ चुके तो सांपों के शत्रु गरुड़ रथ की ध्वजा के ऊपर आ बैठे। चलते समय पर्वत की गुफाओं को कंपाने वाला नगाड़ों का शब्द होने लगा। धरती कांपने लगी।

उनकी सेना उनके पीछे थी। रथ, हाथी, घोड़े और पैदल सब एक-दूसरे से सट कर चल रहे थे। उसी के साथ श्रीकृष्ण का रथ भी बहुत धीरे-धीरे चल रहा था। वह मुड़-मुड़ कर समुद्र से घिरी हुई सुनहरी द्वारिका को देखते जा रहे थे। वह द्वारिका रत्नों से भरी हुई थी। उसके भवन बड़े सुन्दर थे। वे मणियों, चित्रों और खिलौनों से सजे थे। उनपर पताकाएं फहरा रही थीं। भीतर पालतू पक्षी चहचहाते थे। वहां के मार्ग कीचड़ रहित और विस्तृत थे। वहां के निवासियों का चरित्र निष्कपट, निष्पाप और कुल-धर्म के अनुसार था। वहां की नारियां परम सुंदर थीं। घर-घर में कल्पवृक्ष लगे हुए थे। वे लोग जो चाहते थे वही उनको मिलता था।

ऐसी द्वारिका नगरी को देखते हुए श्रीकृष्ण सेना

के साथ बस्ती से बाहर आ गये। समुद्र की तरंगें झाग फेंकती हुई उठ रही थीं। उसके कारण बड़ा शोर हो रहा था। सदा गरजने वाले मेघ एक कोने में चुपचाप जल पी रहे थे। यहाँ उन्होंने समुद्री द्वीपों में रहने वाले व्यापारियों को देखा और उनका अभि-नन्दन किया।

वहाँ से चलकर वे कच्छ प्रदेश में पहुंचे। सैनिकों ने वहाँ लवंग-पुष्पों की मालायें धारण कीं, नारियल का जल पिया और हरी सुपारियों को चबाया। इस प्रकार समुद्र का आतिथ्य स्वीकार करते हुए श्रीकृष्ण ने आगे के मार्ग पर रैवतक पर्वत को देखा। वह नाना प्रकार की मणियों और धातुओं से परिपूर्ण था। उसपर चारों ओर से बादल छा रहे थे। ऐसा मालूम होता था, जैसे वह सूरज का रास्ता रोकना चाहता हो। उस पर नाना प्रकार के पुष्पों से आच्छा-दित वृक्ष थे। उनकी डालों पर नीलकंठ वाले मोर बैठे हुए थे। वहां कमल भी बहुत थे। उनपर भौंरे गूंज रहे थे।

श्रीकृष्ण ने रैवतक को पहले भी अनेक बार देखा था, लेकिन इस बार उन्हें उनकी नई सुन्दरता देखकर बड़ा अचरज हुआ। यह देखकर उनका सारथी बोला, "महाराज! इस पर्वत की चोटियां

बड़ी ऊंची हैं। उनपर चन्द्रमा और सूर्य की किरणें पड़ती हैं। मेघ इन पर जल बरसाते हैं। यहां झरने नाचते हैं। दूब से भरी सुनहरी भूमिवाला होने के कारण यह आप-जैसा लगता है। देखिए, यहां नाना रंगवाले 'प्रियक' जाति के हिरण घूमते हैं। हाथी सरोवर में घुसकर कमलों से खेलते हैं। यह पर्वत कदंब के फूलों की सुगंध से महक रहा है। यहां सिद्ध और किन्नर विहार करते हैं। वायु बांसों के सुराख में से होकर अंदर जाती हुई कैसा मधुर शब्द कर रही है! यहां के सरोवरों में इंद्रनील मणियों की शिलाएं पड़ी रहती हैं। झरनों के ऊपर से गिरने के कारण जल-धारा पर रत्नों की किरणें पड़ रही हैं। उससे वह इंद्रधनुष की तरह रंगीन हो उठी है। यहां न शीत की अधिकता है, न गर्मी की। यहां अनेक नदियां बह रही हैं और उनके दोनों तटों पर कमल खिले हुए हैं। ऐसा जान पड़ता है कि यह रैवतक पर्वत आपको अतिथि के रूप में आया जानकर उठकर खड़ा हो गया है और आपका सम्मान कर रहा है।"

: ४ :

श्रीकृष्ण ने सारथी की ऐसी प्रिय लगने वाली सच्ची बातें सुनीं, तो उन्होंने वहां रुकने की इच्छा

प्रकट की! उनकी सेना कदली वनों से शोभित ऊंचे रैवतक पर्वत की ओर चल पड़ी।

राजा लोगों ने सिंहों को मार डाला और उनकी गुफाओं में ठहर गये। सबने अपने-अपने लिए सुविधा-जनक स्थान ढूंढ़ लिये।

कहीं रथों की पंक्तियां लगी हुई थीं, कहीं हाथी तम्बुओं की तरह शोभा दे रहे थे। बनियों ने मार्ग के दोनों ओर दुकानें सजा ली थीं और वहां खरीदारों की भीड़ लगी हुई थी। इतने लोगों के आ जाने से खरगोश और हिरन परेशान होकर इधर-उधर दौड़ रहे थे।

श्रीकृष्ण वहां ठहर गये तो उनकी सेना के लिए वसंत आदि सभी ऋतुएं, अपने-अपने विशेष फल-फूल लेकर एक साथ धरती पर आ गईं। सबसे पहले वसंत ऋतु ने दर्शन दिये। नाना प्रकार के फूल खिल उठे। चारों ओर सुगन्ध महकने लगी। फिर आई ग्रीष्म ऋतु, कोमल पाटल के फूलों की कलियां खिलाती हुई। देखते-देखते शिरीष और चमेली के फूल महकने लगे। लेकिन ग्रीष्म के तुरन्त बाद वर्षा में मेघों ने आकाश को घेर लिया। बिजली और इन्द्रधनुष उसकी सुन्दरता को बढ़ा रहे थे। उन्हें देखकर मोर नाचने लगे। पानी पड़ने से धरती का ताप दूर हो गया। सूर्य के

दर्शन दुर्लभ हो गये। पक्षी घोंसलों में जा छिपे। दिशाओं का ठीक-ठीक ज्ञान नहीं रहा और तब आ पहुंची शरद ऋतु।

शरद के आने पर सूरज फिर चमकने लगा। हंस बोलने लगे और मोर मौन हो गये। लाल रंग के जवाकुसुम, नीलझिंटी और बंधूक पुष्पों से वन शोभित हो उठे। रक्त कमलों ने पुरुषों को उत्कंठित कर दिया। आश्विन मास में धान की रखवाली करने वाली किसान स्त्रियों ने जब गाना शुरू किया तो हिरन धान खाना भूल गये। फिर छितवन के फूलों की महक से महकती हुई वायु ने कार्तिक मास के आने की सूचना दी। मेघ रहित आकाश ऐसा लगा जैसे म्यान से निकली हुई तलवार। धरती पर नवीन कमलों की केसर का पराग उड़ने लगा। सरोवरों का जल निर्मल हो गया। श्वेत हंस उड़ने लगे। वे ऐसे लगते थे मानो आकाश हँस रहा हो।

इसके बाद हेमंत ऋतु ने आकर गहरी-गहरी नदियों को भी बर्फ बना दिया। जाड़ा पड़ने लगा। शिशिर ऋतु में प्रियंगु-लताओं पर फूल खिल उठे। सूर्य की किरणें भी प्रबल शीत का मान भंग न कर सकीं।

इस प्रकार फूलों के भार से पेड़ों को झुकाने

वाली और भौरों की गुंजार को कभी बन्द न करने वाली सारी ऋतुओं को धारण करने वाले रैवतक पर्वत पर श्रीकृष्ण सेना-सहित बिहार करने लगे।

: ५ :

विहार करने के बाद उनकी यात्रा फिर आरंभ हो गई। श्रीकृष्ण सुन्दर धुरी वाले उस रथ पर चढ़े जो सोने की तरह चमक रहा था और जिसमें तेज दौड़ने वाले घोड़े जुते हुए थे। वह चले, दूसरे राजा उनके पीछे चले। हाथी, घोड़े, ऊंट, रथ सभी चल पड़े। चलते समय पहले रथ के पहियों से मार्ग की मिट्टी फट जाती थी, फिर हाथी उसे पैरों से दबा कर समतल कर देते थे। इस प्रकार अनगिनत भागों में बंटी हुई वह सेना आगे बढ़ रही थी। उसमें विनय और नम्रता की मूर्ति बने हुए अनेक छत्रधारी राजा थे। इस कारण वह केवल छत्रमयी दिखाई पड़ती थी।

मार्ग में गांव की स्त्रियां, कांटों की बाड़ों के पीछे से गरदन उठा कर, बहुत देर तक श्रीकृष्ण को निहारती रहती थीं। श्रीकृष्ण ने भी उन गोपालों को देखा, जो गोचर भूमि पर बैठे गप्पें लड़ा रहे थे। उनमें से कुछ जोर-जोर से हँस रहे थे और कुछ श्रीकृष्ण का नाम जपने में मग्न लगा रहे थे। कहीं गौएं आनन्द से

बछड़ों को चाट रही थीं। कहीं ग्वाले घुटनों में बरतन दबाये दूध दुह रहे थे और धीरे-धीरे दूध की धाराओं का स्वर बढ़ रहा था।

आगे बढ़े तो आंवले के वन में बैठी हुई पहाड़ी रमणियों ने विस्मय से आंखें फाड़कर उन्हें देखा। केसरी ने भी अनादर से एक क्षण के लिए आंखें खोलीं, लेकिन फिर बन्द कर लीं। वह सोना चाहता था और उसे सेना का कोई डर नहीं था।

इस प्रकार नदियों को, पहाड़ों को और नगरों को पार करती हुई वह सेना आगे बढ़ती हुई यमुना के किनारे पहुंच गई। सेना के लोग बहुत-सी नौकाओं में बैठकर यमुना को पार करने लगे। कुछ ने तैरकर भी पार किया। हाथी तुरंत पार चले गये। घोड़े किनारे पर दृष्टि गड़ाये ऊपर को मुंह किये आगे बढ़ रहे थे। सांड़ पार जाकर किनारे तोड़ने लगे और रथ के पहियों से यमुना का जल उछलने लगा।

युधिष्ठिर को बराबर समाचार मिल रहे थे। जैसे ही उन्हें श्रीकृष्ण के यमुना पार करने का समाचार मिला, वह आनन्द-विभोर होकर उनके स्वागत के लिए चल पड़े। सेना-सहित सब भाई भी साथ थे। दूर से ही उन्होंने श्रीकृष्ण को देखकर रथ से उतरना चाहा, परन्तु उससे पहले ही अपनी बुआ के

पुत्र युधिष्ठिर को प्रणाम करने के लिए श्रीकृष्ण स्वयं उतर पड़े। उन्होंने जैसे ही सिर झुकाया वैसे ही युधिष्ठिर ने उन्हें अपनी भुजाओं में बांध लिया। उनका मस्तक सूंघा और उस आलिंगन के कारण वह देर तक रोमांचित रहे। छोटे भाइयों को भी श्रीकृष्ण से भेंट करके बड़ा आनन्द हुआ।

उसके बाद श्रीकृष्ण को रथ पर बैठा कर युधिष्ठिर स्वयं सारथी बने। भीमसेन चंवर डुलाने लगे। अर्जुन ने छत्र लगाया। नकुल-सहदेव उनका अनुसरण करने लगे। गुरु के सामने जिस प्रकार शिष्य विनीत भाव से बैठते हैं, उसी प्रकार पांडव श्रीकृष्ण के पास बैठे।

यज्ञ के लिए आये हुए राजाओं के तम्बुओं को देखते हुए उन सबने नौ द्वारों वाले इंद्रप्रस्थ नगर में प्रवेश किया। दुंदुभि बजने लगी और पुरवासिनी रमणियां सब काम छोड़कर श्रीकृष्ण को देखने दौड़ पड़ीं। उतावली के कारण उन्होंने कटि के आभूषण गले में, कानों के सिर पर और हाथों में तथा नचे के वस्त्र को सिर पर और उत्तरीय को नीचे पहन लिया। वे धान की खीलों को अंजलियों में भर-भर कर श्रीकृष्ण पर बरसाने लगीं और सुधबुध भूलकर सतृष्ण नेत्रों से उन्हें निहारने लगीं।

श्रीकृष्ण ने भी उन्हें देखा। अनेक रास्तों को पार करते हुए वह सभा-भवन में पहुंच गये। इंद्र के भवन को लजाने वाले उस भवन को मयदानव ने बनाया था। उसके फर्श पर पद्मराग मणियां लगी हुई थीं, जिनपर नीलमणि की किरणों के पड़ने से ऐसा लगता था, मानो रक्त वर्ण के तालाब में काई लगी हो। दीवारें स्फटिक से बनी थीं। रात में जब चंद्रमा की किरणें उनपर पड़ती थीं तो वे एकरूप हो जाती थीं। लोग टटोल-टटोल कर उन्हें पार करते थे।

वह सभा-मंडप ऐसा विचित्र था कि उसमें कमलिनी के नीचे जो जल था वह थल की तरह दिखाई देता था। जिस सभा-भवन में इंद्रनील मणियों वाले फर्श थे वहां इतनी चमक थी कि आगंतुक जल के भ्रम में वस्त्र ऊपर उठा लेते थे।

यही सब देखते हुए श्रीकृष्ण युधिष्ठिर के साथ सोने की ईंटों से बने उनके भवन में गये और एक विशाल सिंहासन पर बैठ गये। नर्तकियां नृत्य करने लगीं। नगर भर में उत्सव की आज्ञा दे दी गई। ऐसा करते समय वह भूल गये कि उस नगर में तो सदा ही उत्सव होता रहता है। श्रीकृष्ण स्वजनों से कुशलक्षेम पूछने लगे और फिर युधिष्ठिर से बातें करने में मगन हो गये।

: ६ :

युधिष्ठिर श्रीकृष्ण की प्रशंसा करते हुए बोले, "मैं राजसूय यज्ञ करना चाहता हूं। आप मेरी सहायता करें। आपके पास रहने पर ही मेरा यज्ञ सकुशल समाप्त होगा। मुझे जो कुछ मिला है आपकी कृपा से मिला है। भाइयों-सहित मैं आपके अधीन हूं।"

श्रीकृष्ण ने यह सुनकर कहा, "आप राजसूय यज्ञ करने के लिए सब प्रकार से योग्य हैं। मुझसे आज जो चाहें वह काम ले सकते हैं। मुझे आप अर्जुन से भिन्न न समझें। जो राजा इस यज्ञ में दास की तरह काम न करेगा, मेरा यह सुदर्शन-चक्र उसका सिर उठा देगा।"

श्रीकृष्ण के ये वचन सुन कर युधिष्ठिर बड़े प्रसन्न हुए और यज्ञ की तैयारी करने लगे। पुरोहित लोगों ने होम द्वारा देवताओं का आह्वान किया। उद्गाता सामगान करने लगे। होता और अध्वर्यु ऋक् और यजुर्वेदों का पाठ कर रहे थे। द्रौपदी कुशा की मेखला पहने घूम-घूम कर होम की सामग्री का निरीक्षण कर रही थीं। सब काम ठीक प्रकार चल रहा था।

इसके बाद राजा युधिष्ठिर योग्य ब्राह्मणों को धन और भूमि दान में देने लगे। खूब स्वागत-सत्कार हुआ। राजाओं ने भी अपार धन युधिष्ठिर को भेंट में

दिया, पर उन्होंने सब कुछ लुटा दिया। किसी को निराश नहीं लौटाया। श्रीकृष्ण को रक्षक नियुक्त कर, बिना किसी शंका और भय के, वह दान, होम और यज्ञ करने लगे।

जब यज्ञ इस प्रकार समाप्त होने जा रहा था तब धर्मपुत्र युधिष्ठिर भीष्म से पूछने लगे, "दादा, अर्घ्य-दान का अधिकारी कौन है ?" पितामह प्रसन्न होकर अर्घ्य लेने के छह अधिकारियों के गुण गिनाने लगे। अंत में बोले, "या इनमें से सब गुणों वाले एक व्यक्ति की ही पूजा करनी चाहिए, यह भी एक विधि है। इस समय मुझे तो सब गुणों के आगार और असुरों का नाश करनेवाले श्रीकृष्ण ही पूजा के योग्य दिखाई देते हैं।"

फिर विस्तार से उनके गुणों और अवतारों का वर्णन करके उन्होंने कहा, "युधिष्ठिर, तुम धन्य हो ! तुम्हारे सामने भगवान स्वयं आ गये हैं। यज्ञ में यज्ञ-कर्ता लोग दूर से जिनकी पूजा करते हैं उनको अर्घ्य देकर तुम हमेशा के लिए साधुवाद प्राप्त करो।"

यह सुन कर राजा युधिष्ठिर ने सब राजाओं के सामने श्रीकृष्ण की विधिवत् पूजा की। पूजा के बाद युधिष्ठिर ने उनका जो सम्मान किया उसे शिशुपाल न सह सका। वह क्रोध से भरकर बार-बार कांपने

लगा। उसकी भवें तन गईं। शरीर तमतमा उठा और आवेश में आकर उसने अपने हाथ से अपनी कठोर जांघों पर इस प्रकार ताल ठोंकी कि लोग भय से कांप उठे। इसके बाद उसने पहले युधिष्ठिर की निंदा की, "तुमने अपने संबंधी को ही गुणवान समझा, पर वह राजा नहीं है। इतने तेजस्वी राजाओं के रहते वह अर्घ्य नहीं ग्रहण कर सकता। यदि तुम कृष्ण की ही पूजा करना चाहते थे, तो तुमने अपमान करने के लिए इन सब राजाओं को क्यों बुलाया?" फिर वह भीष्म पितामह का उपहास करता हुआ श्रीकृष्ण से बोला, "तुम्हें यह पूजा नहीं ग्रहण करनी चाहिए थी। अपने बारे में सोचो तो कि तुम कौन हो। तुमने मधुराक्षस को नहीं मारा, मधुमक्खियों को मारा है। जरासंध ने तुम्हारा तेज नष्ट किया है। तुम सत्यप्रिय इसलिए कहलाते हो कि तुम सत्यभामा के पति हो, नहीं तो तुम झूठे हो। न तुम्हारे पास राजलक्ष्मी है, न तुमने युद्ध में कोई पराक्रम दिखाया है। जरासंध ने तुम्हें युद्ध में भूमि छीनकर मथुरा से निकाल दिया था। सो तुम व्यर्थ ही भूमिपाल कहलाते हो। तुम पापी हो। गुणहीन हो। तुम्हारी यह पूजा बिना बालों वाले सिर में कंघी करने के समान उपहासजनक होगी।"

फिर वह राजाओं को भड़काने लगा, "हे राजा लोगो, सिंहों के समान आपको देखते हुए भी इन कुंती-पुत्रों ने गीदड़-जैसे कृष्ण की जो पूजा की उससे आपका घोर अपमान हुआ है।"

इस प्रकार श्रीकृष्ण की निंदा करके शिशुपाल अट्टहास करने लगा। पर श्रीकृष्ण तनिक भी विचलित नहीं हुए। वे प्रतिज्ञाबद्ध थे और मन-ही-मन गिन रहे थे कि शिशुपाल कितने अपराध कर चुका है। परन्तु पितामह भीष्म उनका यह तिरस्कार देख कर बहुत ही क्रुद्ध हो उठे और अपना बायां पैर धरती पर पटक कर बोले, "मैंने आज सभा में श्रीकृष्ण की जो पूजा की है, वह जिसे असह्य हो वह धनुष चढ़ा ले। मैं अपना यह पैर सभी राजाओं के सिर पर रखता हूं।"

यह सुनकर शिशुपाल के पक्ष के राजा भी क्रोध से लाल-पीले हो उठे। वे श्रीकृष्ण को तिनके के समान समझते थे। युधिष्ठिर को तो कुछ भी नहीं। भीष्म का उन्हें भय नहीं था। शिशुपाल सांप की तरह फुफकारता हुआ फिर विष उगलने लगा। वह बार-बार राजाओं को युद्ध के लिए उत्तेजित करने लगा। अंत में श्रीकृष्ण को युद्ध के लिए ललकारता हुआ पांडवों के रोकने पर भी वह सभा-मंडप से बाहर

चला गया।

वह इतनी तेजी से घोड़े पर चढ़कर भागा कि मार्ग में लोग 'यह क्या बात हो गई' कहकर सोचते ही रह गये। फिर शंख बज उठे। रणभेरी गूंजने लगी। जनता में व्यग्रता फैल गई और राजाओं ने झट अपने-अपने कवच पहन लिये। सैनिक, हाथी, घोड़े, रथ अति शीघ्र आकर उपस्थित हो गये। रानियां भी राजाओं को विदा देकर उनके साथ बलि होने को तैयार हो गईं। किसी ने प्रेम से, किसी ने वीर वचनों से, किसी ने मंगल कामना से सब योद्धाओं को विदा दी।

: ७ :

रण की तैयारी हो जाने पर शिशुपाल ने एक दूत को, जो ठीक अवसर पर उचित उत्तर देने में निपुण था, श्रीकृष्ण के पास भेजा। उसने इस प्रकार की बातें कहीं, जिसका अर्थ स्तुति और निंदा दोनों होता था। उसको ये बातें सुनकर श्रीकृष्ण ने सात्यकि को इशारा किया। वह कहने लगे, "हे दूत, तुम बड़े कुशल हो। तुमने बाहर से प्रिय लगनेवाली पर वास्तव में भीतर से अप्रिय बातें इस प्रकार से कही हैं कि वे हमें बाहर से अप्रिय और भीतर से प्रिय मालूम पड़ रही हैं। तुम्हारी वाणी सुनकर सज्जन पुरुष भी उद्विग्न हो उठे

हैं। पिंगल पक्षी की वाणी सुनने में मीठी पर परिणाम में अनिष्टकारी होती है।"

इस प्रकार दूत की निंदा करके सात्यकि ने शिशुपाल को भी खूब खरी-खोटी सुनाई। उन्होंने कहा, "शिशुपाल के प्रलाप से श्रीकृष्ण की कोई हानि नहीं है। दुर्जनों के कड़ुवे वाक्यों से महान् पुरुषों का गौरव नष्ट नहीं होता। दुष्ट लोग अपने दोष देखने में अंधे होते हैं, लेकिन दूसरों के छोटे-से-छोटे दोष को देखने में वे दिव्यदृष्टि वाले बन जाते हैं। सज्जन लोग ऐसा नहीं करते। वे न आत्म-प्रशंसा करते हैं, न पर-निंदा।

"हे दूत! शिशुपाल यदि संधि करना चाहता है तो फिर युद्ध की तैयारी क्यों! आक्रमण के भय से श्रीकृष्ण झुकने वाले नहीं हैं। हे दूत, सुन लो। अब अगर तुमने बकवास की तो हम क्रोध को नहीं रोक सकेंगे।"

सात्यकि के ये वचन सुनकर वह निडर दूत बोला, "मैंने संधि और युद्ध दोनों की बात आपके सामने रख दी है। अब आप जैसा ठीक समझें, करें। नीच लोग गुण और दोष की विवेचना न कर मनमानी करते हैं। युधिष्ठिर ने शिशुपाल का छोड़कर आपकी पूजा की। फिर भी प्रधान वही हैं। उन्होंने मुझे युद्ध

में यादव-गणों को आह्वान करने के लिए भेजा है। वह शीघ्र ही आपका वध करेंगे।"

जब उस निपुण दूत ने प्रलय की वायु के समान ऐसे प्रचंड वचन कहे तो सभा में उपस्थित राजा लोगों का पारा चढ़ गया। उनके शरीर से पसीना बहने लगा और वे बार-बार हाथों से जांघों को पीटने तथा दांतों से ओठों को काटने लगे। लेकिन श्रीकृष्ण का चित्त तनिक भी क्षुब्ध नहीं हुआ। मेघों का जल नदियों के जल को विकृत कर देता है, पर समुद्र के जल में कोई विकार पैदा नहीं होता है। इसी प्रकार उद्धव भी शांत बने रहे, लेकिन दूसरे यदुवंशी दूत को धिक्कारने लगे। जब वह चला गया तो श्रीकृष्ण की सेना भी तुरंत युद्ध की तैयारी करने लगी। बार-बार रण-भेरी बजने लगी। इतना कोलाहल मचा कि देवता भी बहरे हो गये।

दोनों सेनायें जब एक-दूसरे के सामने आ गईं तो पैदल पैदल से, घोड़े घोड़ों से, हाथी हाथियों से तथा रथ रथों से भिड़ गये। रण-भेरी की गम्भीर ध्वनि, रथों की घरघराहट, हाथियों के भीषण चीत्कार और घोड़ों की हिनहिनाहट मिलकर एक हो गई। कुछ योद्धा बाणों का प्रयोग कर रहे थे, कुछ तलवार आदि का। कुछ अस्त्र फेंककर कुश्ती लड़ रहे थे। किसी ने तेज

तलवार के आघात से सामने वाले योद्धा का कवच काट डाला, किसी ने बाण से दूसरे योद्धा की बाईं भुजा को, कांख तक, काट डाला, लेकिन उसने फिर भी ढाल को नहीं छोड़ा।

हाथियों का युद्ध अपूर्व था। वे पैरों से, दांतों से, सूंड से, सभी से युद्ध करते थे। वीर पुरुष जब समर-भूमि में सो जाते तो स्वर्ग की अप्सराएं तुरन्त उन्हें लेने आ जाती थीं, पर उससे पूर्व ही उनकी पत्नियां सती होकर उनके पास पहुंच जाती थीं।

कहीं श्वेत रंग के छत्र पड़े थे, कहीं कुमकुम से रंगे मोतियों के हार। निचले स्थानों पर पड़ा रक्त ऐसा चमक रहा था मानो यमराज ने सुंदरियों के दुपट्टों को रंगने के लिए कुसुंभ का रंग घोल रखा हो। जगह-जगह रक्त की नदियां बह रही थीं और हाथियों के कटे पैर उन नदियों में कछुए के समान लगते थे। पक्षी और गीदड़ भोजन में जुटे हुए थे।

इस प्रकार निरंतर वेग से आगे बढ़ती हुई शिशुपाल के पक्ष की सेना श्रीकृष्ण की विशाल और तरंगित सेना के साथ युद्ध करने लगी। जय-पराजय निश्चित नहीं थी। भारी कोलाहल मचा हुआ था।

तभी नरकासुर का बेटा वेणुदारी सिंह रूपी बलराम की ओर दौड़ा। बलराम ने क्रोधित होकर तीक्ष्ण

बाणों से उसे मूर्छित कर दिया। इसी प्रकार शिनि ने शाल्व राज पर, उल्मुक ने द्रुम पर और पृथु ने रुक्म पर विजय पाई। महाप्रतापी प्रद्युम्न ने पहले तो बाण को पराजित किया, फिर उन्होंने उत्तमौजा के तेज को नष्ट कर डाला। उनका अपूर्व युद्ध-कौशल देखकर देवता रोमांचित हो उठे। लेकिन अभिमानी शिशुपाल का क्रोध बढ़ गया। वह पागल होकर शत्रुओं की ओर दौड़ा। उसकी सेना भी निर्भयता और ढिठाई के साथ आगे बढ़ी। यह देखकर स्वभाव से युद्ध के लिए तैयार रहने वाली तेजस्वी यदुवंशियों की सेना भी उसकी ओर दौड़ी। देखते-देखते तेज चलने वाले घोड़े और पंखों वाले बाण एक साथ शत्रु-सेना के बीच में घुस गये। भयंकर युद्ध के बाद फिर खून की नदी बहने लगी। उसमें हाथियों की सूंड, वाहन और रथ तैर रहे थे। उनकी कटी देह से वह रणभूमि शोभित हो रही थी।

इसी समय नीलवर्णी परमपुरुष श्रीकृष्ण वहां आये। उन्होंने विशाल डोरी को चढ़ाते हुए धनुष को झुकाया। फिर उस पर बाण चढ़ाकर, शत्रु पर आक्रमण करने लगे। वे बड़ी शीघ्रता से शर-संधान कर रहे थे। उन्होंने असंख्य तीक्ष्य बाणों से ढेर-के-ढर शत्रुओं के सिर काट डाले और रक्त की नदी प्रवाहित

कर दी। वह कल्याण-मूर्ति थे, पापों को नष्ट करने वाले शुद्ध-बुद्ध थे, निर्भय थे। उन्होंने युद्ध में अनुरक्त होकर अहंकार के साथ बल का आश्रय लिया और सिंहनाद करते हुए एक समय में, एक ही बार बहुत से बाण फेंककर आकाश को भर दिया।

शिशुपाल यह पराक्रम नहीं सह सका। उसकी भवें तन गईं और वह निडर होकर श्री कृष्ण को युद्ध के लिए ललकारने लगा। वह निरंतर बाण छोड़ रहा था और उसने श्रीकृष्ण की सारी सेना के चारों ओर, मानो उसे सूर्य की गरमी से बचाने के लिए, बाणों का एक बड़ा वितान-सा तान दिया था।

उसके बाद अद्वितीय महावीर श्रीकृष्ण बाण वर्षा द्वारा शिशुपाल के बाणों को काटने लगे। उनका धनुष बराबर जोर से शब्द कर रहा था। प्रत्यंचा बिजली के समान चमक रही थी। मेघ से जैसे जल-धारा निकलती है, वैसे ही धनुष से बाण वर्षा हो रही थी।

दोनों के बाण टकरा कर आग पैदा करने लगे। लेकिन जिस प्रकार शरत काल की वायु मेघों को छिन्न-भिन्न कर देती है, उसी प्रकार श्रीकृष्ण ने शत्रु के बाणों को काट डाला। यादव सेना खुशी से भर उठी।

अब शिशुपाल ने माया-युद्ध शुरू कर दिया। सबसे पहले उसने सुलाने वाला अस्त्र फेंका। यादव सैनिक धनुषों के ऊपर झुककर सोने लगे। उनके हाथों से अस्त्र गिरने लगे। सारी सेना में केवल श्रीकृष्ण ही जाग रहे थे उन्होंने तुरंत उस माया को दूर कर दिया। माया के दूर होते ही सारी सेना जाग उठी। शिशुपाल ने जब यह देखा तो मंत्र पढ़कर उसने भयंकर सर्प पैदा कर दिये। उन्होंने आकाश मार्ग से यादव सेना पर आक्रमण किया और उससे लिपट गये। उसी समय श्रीकृष्ण ने गरुड़ की ओर देखा। देखते-देखते हजारों गरुड़ पैदा हो गये। उन्हें देखते ही सांप भय से विह्वल होकर पाताल में घुस गये। अब शिशुपाल ने आग्नेयास्त्र को पुकारा। चारों ओर से आग की लपटें उठने लगीं। संसार जलने लगा। श्रीकृष्ण ने तुरन्त वरुणास्त्र को याद किया। सारा आकाश काले मेघों से भर गया। बिजली कड़कने लगी। तूफानी वर्षा ने जरा-सी देर में उस अग्नि को शांत कर दिया। शिशुपाल इस पर क्रोध से पागल हो उठा, नये-नये अस्त्र छोड़ने लगा और श्रीकृष्ण उन्हें काटने लगे।

अंत में उन्हें अजय मान कर शिशुपाल फिर अपशब्द बोलने लगा। उसके ऐसा करने पर श्रीकृष्ण ने

तुरंत सुदर्शनचक्र से उसका सिर काट डाला। उस समय राजाओं ने विस्मय से देखा कि शिशुपाल की देह से एक परम दीप्तिमान तेज निकलकर श्रीकृष्ण के शरीर में समा गया है। उसी क्षण दुंदुभी बज उठी। स्वर्ग से पुष्प बरसने लगे और ऋषियों की स्तुति से वातावरण गूंज उठा।

रावण-वध

: १ :

दशरथ नाम का एक राजा था। वह देवताओं का मित्र और विद्वान् था। उसके गुणों से प्रसन्न होकर सनातन भगवान् विष्णु ने उसे अपना पिता बनाया। वह राजा वेदपाठी, देवताओं के लिए यज्ञ करनेवाला और बंधुओं का सम्मान करनेवाला था। वह मेघों की तरह धन बांटता था और इन्द्र के साथ एक आसन पर बैठता था। अमरावती के समान अयोध्या उसकी राजधानी थी। वह मानो ब्रह्मा की निर्माण-चातुरी की सीमा थी। उस राजा के तीन रानियां थीं। किंतु पुत्र नहीं था। पुत्र की इच्छा से राजा ने पुत्रेष्टि-यज्ञ के जाननेवाले ऋष्यशृंग को अपने यहां बुलवाया। यज्ञ पूरा होने पर रानियों ने यज्ञ का बचा हुआ पुरोड़ाश खाया। फलस्वरूप कौशल्या से राम, कैकेयी से भरत और सुमित्रा से लक्ष्मण और शत्रुघ्न का जन्म हुआ। समय पर गुरु वशिष्ठ ने राजकुमारों का उपनयन किया और वेद तथा शास्त्रों

की शिक्षा दी ।

एक बार राक्षसों से यज्ञ की रक्षा करने की इच्छा से विश्वामित्र मुनि राम को मांगने के लिए राजा के पास आये। राजा ने उनकी बड़ी आवभगत की ।

मुनि ने कहा, "वन में राक्षस हमारी समाधि और यज्ञों में विघ्न डालते हैं। लक्ष्मण के साथ राम उन शत्रुओं का नाश करें।"

यह सुनकर राजा मूर्च्छित हो गये ।

तब मनस्वी विश्वामित्र ने कहा, "धर्म की रक्षा के लिए मैंने आपकी शरण ली है। क्षात्र-धर्म और ब्राह्मण-धर्म परस्पर सहायता की अपेक्षा रखते हैं। हे राजन्, शंका मत करो और पुत्रों को मेरे साथ भेज दो। इन छोटे-मोटे राक्षसों की तो बात ही क्या है, राम तो इनसे भी भयंकर शत्रुओं का नाश करेंगे। हे राजन्, मुझे निराश मत करो।"

राजा ने यह सोचकर कि ब्राह्मण के शाप से पुत्र का वियोग सह लेना अच्छा है, राम को जाने की आज्ञा दे दी ।

नगर के बाहर निकलकर राम ने देखा—शरद् ऋतु की शोभा चारों ओर फैली हुई है—लाल कमल खिल रहे थे, प्रातःकाल की वायु से कांपती हुई कमलिनी रात में कुमुदिनी का रस-पान करनेवाले

भौंरों को मानो रोक रही थी, भौंरों की गुंजार और हंसों के कलरव से भूला हुआ बहेलिया हिरण पर निशाना लगाना भूल गया था, जल भरे हुए कुंज में अपनी ही प्रतिध्वनि से चकित सिंह उछलकर झपटना चाहता था। राम ने जल में खिले हुए कमलों को देखा, भौंरों की गुंजार सुनी, पवन की सुगंधि से चित्त को प्रसन्न किया, लताओं से गिरे हुए फूलों को चुनकर वह मुस्कराते हुए शिला पर बैठ गए और जल पर चमचमाती हुई प्रातःकालीन सूर्य-किरणों की शोभा देखते रहे। खेतों में हरे धान की सीधी लंबी पंक्तियां देखकर वह बहुत प्रसन्न हुए। वे पंक्तियां मानो उनके प्रति स्नेह प्रकट कर रही थीं। उन्होंने उन सुखी ग्वालों को भी देखा, जो बनावट से दूर रहते थे और जिनकी गोपियां सदा उनके पास रहती थीं। वह गोपियों के सीधे-साधे स्वभाव और लजीली दृष्टि को देखकर प्रसन्न हो उठे। आपस में किलोल करते हुए मृगों को देखकर राम को विशेष कुतूहल हुआ। यज्ञ करनेवाले तपस्वी हाथ में शांतिजल के घट और पुष्प लेकर राम की पूजा के लिए आये।

विश्वामित्र ने वन में उन्हें जया-विजया नाम की विद्याएं सिखाईं और राक्षसों को मारने के लिए आवश्यक अस्त्र दिये। ऋषियों को देखते ही मार

डालनेवाली ताड़का नामक राक्षसी ने जब राम पर भी घात किया तो उन्होंने उसे तुरंत ठिकाने लगा दिया और घूम-घूमकर तपोवन की शोभा देखने लगे। यज्ञ का धुआं वृक्षों की शाखाओं को धूमिल कर रहा था। वेदपाठ की ध्वनि पक्षियों के कलरव को दबा रही थी। तपोवन के प्रभाव से सिंह हिरनों को नहीं छेड़ते थे। लताएं फल देने के लिए झुकी हुई थीं। ऐसे तपोवन में वनवासियों ने दोनों राजकुमारों का विधि के अनुसार स्वागत किया और कहा, "आपने इस भूमि को राक्षसों से मुक्त करने का बहुत बड़ा भार अपने ऊपर उठाया है।"

राम बोले, "आप जैसे तपस्वियों की तप-रूपी वायु मेरे बाणों को अग्नि के समान तेज करके शत्रु-रूपी ईंधन को भस्म करती है।"

यह सुनकर मुनि लोग अपने यज्ञ-कर्म में लग गए और राक्षस लोग वर्षा के काले बादलों की तरह चारों ओर से आकाश में घिर आये। तब लक्ष्मण ने धनुष चढ़ाकर उनको मार डाला, मारीच को रण में डटे हुए देखकर राम ने ललकारा, "अरे दुष्ट, तू फलाहारी मुनियों के मांस से अपना पेट भरता है! तुझे दया नहीं आती?"

मारीच ने उत्तर दिया, "हे राघव, द्विजों को

खाना हमारा धर्म है। ब्राह्मणों की तरह वेदाचार में हमारा अधिकार नहीं है।"

राम बोले, "अरे दुष्ट, यदि तेरा यह धर्म है तो तेरे जैसे ब्रह्मद्वेषियों को मारना हमारा भी धर्म है।

यह कहकर राम ने अपने बाण से उस राक्षस को तिनके के समान दूर फेंक दिया। इससे वहां के सब मुनि प्रसन्न हुए और राम की बड़ाई करने लगे। इसके बाद मुनि विश्वामित्र राम को जनक की यज्ञ-भूमि में ले गये। जनक ने राम के बल की परीक्षा के लिए उन्हें शिव का धनुष दिया। राम ने बड़ी सरलता से उसे तोड़ डाला। इस पर जनक ने अपने दूतों को अयोध्या भेजा। सब हाल सुनकर राजा दशरथ मिथिला आये। वहां जनक ने उनकी बड़ी आवभगत की और अपनी पुत्री सीता का विवाह राम से कर दिया। सीता क्या थी, मानो चलती-फिरती सुनहरी लता थी या आकाश से नीचे उतरी हुई टिकाऊ विद्युल्लता थी या चन्द्रमा की अधिष्ठात्री देवी साक्षात् प्रकट हो गई थी। विवाह के अगले दिन दशरथ की सारी सेना अयोध्या के लिए चल पड़ी। लेकिन मार्ग में धनुर्धर परशुराम आते हुए दिखाई दिये। उन्होंने कड़ककर राम से कहा, "इस धनुष पर बाण चढ़ाओ।" दशरथ उनके पराक्रम को जानते थे। बोले, "हे मुनि, क्रोध

शांत कीजिये। बालक राम आपके सामने क्या है!"
लेकिन जब परशुराम ने दशरथ की बात पर ध्यान नहीं दिया तो राम ने धनुष खींचकर उस पर बाण चढ़ा दिया। फिर सेना अयोध्या की ओर चल पड़ी।

: २ :

राक्षसों के वध और परशुराम के पराभव से राम की कीर्ति शीघ्र फैल गई। तब राजा ने घोषणा की कि राम का राज्याभिषेक किया जायगा। उसके लिए तैयारियां होने लगीं। लेकिन कैकेयी ने इस कार्य में विघ्न डाला और राम के वन जाने का वर मांग लिया। राजा ने बदले में धन और देश देना चाहा, पर उसने कुछ भी स्वीकार न किया। उलटे, भरत के लिए राजगद्दी मांग ली। राजा को उसकी बात स्वीकार करनी पड़ी। किसी ने राजा की निन्दा की, किसी ने भरत की और किसी ने कैकेयी को दोष दिया। शोक में भरी हुई जनता राम के साथ जाने को तैयार हो गई। राम ने लोगों को बहुत समझाया। बड़ी कठिनता से वे लौटे। गंगा-तट पर पहुंचकर उन्होंने सुमंत्र को भी लौटा दिया। राम के बिना सुमंत्र को देखकर दशरथ बहुत दुखी हुए और उन्होंने प्राण त्याग दिये। रानियां विलाप करने लगीं। समाचार पाकर भरत तुरन्त अयोध्या लौटे और वहां की दशा देखकर शोक

में डूब गये। जब उन्हें सब बातों का पता लगा तो उन्होंने कैकेयी को बहुत धिक्कारा।

राजा की अंत्येष्टि करने के बाद भरत ने गद्दी पर बैठना स्वीकार नहीं किया, बल्कि राम को वापस लाने के लिए वह वन की ओर चले। मार्ग में ऋषि-मुनियों से मिलते हुए वह चित्रकूट पहुंच गये। नंगे पैर आगे बढ़ उन्होंने राम के चरण छुये और पिता की मृत्यु का समाचार सुनाया। राम व्याकुल हो उठे। बोले, "भाई, पिता ने मुझे सुखसाध्य वनवास देकर देश-रक्षा का कठिन काम तुम्हें सौंपा है। उसका सम्मान करने के लिए तुम पृथिवी का शासन करो।"

भरत ने कहा, "बड़े भाई के होते हुए मैं इस भार को कैसे स्वीकार कर सकता हूं ? हे राम, कुल की कीर्ति का लोप करनेवाले इस काम में मुझे मत लगाओ। हां, यदि आप राजा हों तो आपकी आज्ञा से मैं राज का प्रबन्ध स्वीकार कर सकता हूं।" राम ने इस बात को स्वीकार किया और उनकी चरण-पादुका लेकर वापस लौट गये। उनके लौट जाने पर राम दण्डक वन की ओर चले गए। उस वन में उन्होंने विराध नामक राक्षस को मारा और वहां से वे शरभंग ऋषि के आश्रम में आये। उनके सामने ही शरभंग ऋषि ने अपना शरीर आग में भस्म कर दिया। तब

वे सुतीक्ष्ण मुनि के आश्रम में गये और पर्णशाला में रहने लगे। यहां पर शूर्पणखा से उनकी भेंट हुई। उसने बार-बार उन दोनों भाइयों को लुभाने की बड़ी चेष्टा की। अंत में लक्ष्मण ने तलवार से उसकी नाक काट ली। उस पर वह क्रुद्ध हो उठी और खर-दूषण नामक अपने भाइयों को युद्ध के लिए ले आई। चौदह हजार वीरों को लेकर उन्होंने राम से भयंकर युद्ध किया। लेकिन राम-लक्ष्मण ने उन राक्षसों को अपने वाणों से इस प्रकार मार गिराया, जैसे शिकारी मृगों को और गरुड़-सर्पों को मारता है। उन्होंने खर-दूषण को भी यमलोक पहुंचा दिया। तब सूर्पणखा लंका में रावण के पास गई और सब समाचार उसको सुनाये। उसने सीता की सुंदरता का बखान करके रावण को भड़काया। रावण तुरन्त मारीच के पास पहुंचा और उसने सब हाल कहा। मारीच बोला, "हे रावण, तुम राम की शक्ति नहीं जानते। मैं जानता हूं। तुम लंका में मौज करते रहो। बलवान से लड़ाई मोल मत लो।"

लेकिन रावण नहीं माना और मारीच को मार डालने की धमकी देने लगा। मारीच डर गया और उसके साथ जाने को तैयार हो गया। बोला, "मैं सोने का हिरन बन राम-लक्ष्मण को लुभाकर दूर ले

जाऊंगा, तब तुम अपना मन चाहा करना।" उसने ऐसा ही किया। वह राम को बहकाकर दूर ले गया और जब राम ने उसे बाण से बींध डाला तो मरते समय उसने लक्ष्मण को पुकारा। वह पुकार सुनकर सीता डर गई और लक्ष्मण को राम की रक्षा के लिए भेजा। लक्ष्मण ने बहुत समझाया, पर वह न मानी। उल्टे, उन्हें दोष देने लगी। तब वह चले गये। उनके जाने के बाद परिव्राजक का वेष बनाकर रावण वहां आया और छल से बलपूर्वक सीता को उठा ले गया। मार्ग में जटायु ने उसे रोका, लेकिन रावण ने उसके पंख काट डाले और सीता को लेकर वह लंका में चला आया।

: ३ :

रावण सीता को ले तो आया, लेकिन उसके तेज को देखकर वह बल-प्रयोग न कर सका। उधर मारीच को मारकर लौटते हुए राम ने लक्ष्मण को देखा और सब समाचार जाना। वह शंकित हो उठे और दौड़कर कुटिया पर लौटे, लेकिन सीता वहां नहीं थी। राम विलाप करने लगे। रोते-रोते वह मूर्च्छित हो गये। होश आने पर फिर पागलों की तरह वह मृग-पक्षियों से सीता के विषय में पूछने लगे। अन्त में धनुष लेकर गरजते हुए उन्होंने कहा, "अभी मैं सूर्य के मार्ग को

रोक लेता हूं, पहाड़ों को विदीर्ण कर देता हूं, समुद्र को सुखा देता हूं और यम को भी काल के मुख में पहुंचा देता हूं। क्या संसार ने मुझे बलहीन समझ रखा है ?" यह कहकर जैसे ही उन्होंने धनुष पर बाण रखा वैसे ही लक्ष्मण ने उन्हें रोका। कहा, "भाई, क्रोध न करो। आपसे कौन युद्ध कर सकता है ? पर इस समय जो उचित हो वही उपाय करना चाहिए।" तभी उन्होंने जटायु को देखा और उससे उन्होंने रावण का समाचार पाया। यह समाचार देकर जटायु ने प्राण छोड़ दिये। कुछ दूर आगे चलने पर उनकी भेंट लम्बी भुजाओंवाले कबन्ध राक्षस से हुई। राम ने उसकी भुजाएं काट डालीं तो भी उसने मित्रता दिखाते हुए कहा, "रावण सीता को लंका ले गया है। ऋष्यमूक पर्वत पर सुग्रीव रहता है। उसके भाई बाली ने उसकी स्त्री छीन ली है। हे राम, तुम उसके साथ मित्रता करो, उससे रावण का वध करना आसान होगा।" आगे बढ़ने पर राम शबरी के आश्रम में पहुंचे। उसने उनकी भक्ति-भाव से पूजा की और कहा, "हनुमानजी द्वारा तुम्हारी सुग्रीव से मित्रता होगी और तुम शीघ्र सीताजी को पाओगे।" अन्त में राम ऋष्यमूक पर्वत पर आये। उन्हें देखकर सुग्रीव ने हनुमान को उनके पास भेजा। सब समाचार जानकर

हनुमान उन्हें सुग्रीव के पास ले गये और अग्नि को साक्षी करके दोनों की मित्रता करा दी। इसके बाद राम की प्रेरणा से सुग्रीव बाली से युद्ध करने गया। इस युद्ध में छल से राम ने बाली को मार डाला। बाली ने राम को उपालम्भ देते हुए कहा, "हे राघव, आपने मुझे व्याध की तरह क्यों मारा !"

राम बोले, "हे बाली, तुमने छोटे भाई की स्त्री को छीन लिया है, इसलिए मैंने तुमको मारा।"

बाली कुछ उत्तर न दे सका और अपने पुत्र अंगद को राम के हाथ सौंपकर मर गया। उसके बाद वर्षा —तु आ गई। सीता के वियोग में राम व्याकुल हो उठे। धीरे-धीरे शरद् आई और दल-के-दल क्रौंच पक्षी आकाश में दिखाई देने लगे। राम लक्ष्मण से बोले, "आज भी सीता को ढूंढ़ने के लिए सुग्रीव कुछ नहीं कर रहा है। वर्षा बीत गई है, पर अब भी वह प्रमादी घर में पड़ा हुआ है। अवश्य ही वह बाली के मार्ग पर जाना चाहता है। तुम जाकर उस दुष्ट को समझाओ।" लक्ष्मण तुरन्त किष्किन्धा आये। सुग्रीव ने नम्रता से उनसे कहा, "आपकी कृपा से मैं राम के दिये हुए भोगों को भोगता हुआ आराम करने लगा था, पर अब मैं तुरन्त ही वानरों को भेजता हूं।" और वह सेना को लेकर राम के पास पहुंचा। राम को

संतोष हुआ। सुग्रीव ने वानरों को चारों दिशाओं में जाने का आदेश दिया। हनुमान को उन्होंने विशेष रूप से दक्षिण दिशा में भेजा। राम ने उन्हें अपनी मुद्रिका दी। उसे लेकर हनुमान वहां से चल पड़े। मार्ग में एक गुफा में उनकी स्वयंप्रभा नामक स्त्री से भेंट हुई। उसने उन्हें आंख मींच लेने को कहा। तब उसके प्रभाव से वह उस खड्ड से निकलकर एक ऐसे स्थान पर पहुंचे, जहां जटायु का भाई सम्पाति रहता था। उसने उन्हें लंका का मार्ग बताया। वहां से वे लोग समुद्र-तट पर आये। उस अगाध समुद्र को देखकर सबने हनुमान से ही पार जाने की प्रार्थना की।

हनुमान आकाश-मार्ग से समुद्र-पार चले। मार्ग में उन्होंने एक राक्षसी को मारा और वह शीघ्र ही लंका पहुंच गये। वहां उन्होंने राक्षस और पिशाचों से भरी हुई लंका को देखा। वह छिपकर सीता को ढूंढ़ने लगे। ढूंढ़ते-ढूंढ़ते रावण के महल में पहुंचे, लेकिन सीता वहां नहीं थी। फिर वह अशोक वाटिका में आये। वहां घने वृक्षों के बीच उन्होंने सीता को देखा। वह अत्यंत मलिन वेष में थी और किसी प्रकार अपने-आपको राक्षसियों से बचा रही थी। उसी समय रावण वहां आया और अनेक प्रकार से अनुनय-विनय करने लगा, लेकिन उत्तर में सीता ने यही कहा,

"हे दुष्ट, राम शीघ्र ही यहां आयंगे, तू उनके बाण से बचकर कहां जायगा ? वह तेरा नाम भी शेष नहीं रखेंगे।" इसपर रावण क्रुद्ध हो उठा। बोला, "यदि एक मास के भीतर तुम मेरे पास नहीं आओगी तो मैं तुम्हें मार डालूंगा।" और भयंकर राक्षसियों को वहां छोड़कर चला गया। ये राक्षसी सीता को डराने लगीं तो त्रिजटा ने उन्हें डांटकर वहां से हटा दिया। इसी समय हनुमान उनके सामने प्रकट हुए। अपना परिचय देते हुए उन्होंने सब समाचार सुनाये। उन्होंने राम की मुद्रिका भी सीताजी को दी। सीता ने उनके लंका-प्रवेश पर आश्चर्य प्रकट करते हुए राम के विषय में बहुत-कुछ पूछा और अपनी चूड़ामणि देकर उनको विदा किया। तब हनुमान दूत के रूप में कुछ पराक्रम दिखाने की इच्छा से अशोक-वन को भंग करने लगे।

राक्षसों ने यह समाचार रावण को सुनाया। उसने अस्सी हजार राक्षसों को भेजा। हनुमान ने उन सबको मार डाला। यहां तक कि रावण के बेटे अक्षय-कुमार को भी मार डाला। तब रावण ने मेघनाद को भेजा, मेघनाद और हनुमान में भयंकर युद्ध हुआ, लेकिन अंत में मेघनाद ने ब्राह्मपाश चलाकर हनुमान को बांध लिया और रावण के पास ले आया। रावण उन्हें मार डालना चाहता था, लेकिन विभीषण के यह

कहने पर कि दूत अवध्य होता है, वह कुछ न कर सका। उसको क्रोध करते हुए देखकर हनुमान ने कहा, "हे रावण, तुम्हारे जैसे त्रिलोकपति को इस प्रकार एक दूत पर कुपित होना उचित नहीं। तुम राम और सुग्रीव के साथ संधि कर लो और सीता को लौटा दो।"

रावण और क्रुद्ध हुआ, बोला, "राक्षसों को मारना और उद्यान का नाश करना क्या यह दूत का काम है? स्त्री ताड़का को मारनेवाला राम यदि तपस्वी है तो पापी कौन है? जिसने सुग्रीव के साथ युद्ध में लिपटे हुए बाली को मारा वह राम क्या बड़ाई के योग्य है?

इस प्रकार बात बढ़ती चली गई और अंत में रावण ने आज्ञा दी, "इस बंदर को जला डालो।" जैसे ही हनुमानजी की पूंछ में आग लगाई गई वह आकाश में उड़ गये और उन्होंने रावण की नगरी में आग लगाना शुरू कर दिया। देखते-देखते चारों ओर कोहराम मच गया। शीघ्र ही आंग फैलने लगी और उसने चारों ओर से तोरण-सहित नगर को घेर लिया। नगर को जलाकर हनुमान फिर सीता के पास गये और उनसे आज्ञा मांगकर समुद्र के इस पार आये।

उन्हें देखकर सब वानर बड़े प्रसन्न हुए और राम के समीप पहुंचे। हनुमान ने प्रणाम करके सीता की

चूड़ामणि सामने रखी। राम पुलकित हो उठे। हनुमान ने कहा, "हे प्रभो, आपके प्रताप को न जानकर मूर्ख रावण सीता-रूपी अग्नि-कण को लिये हुए लंका-रूपी वन में बैठा है। अवश्य ही उसका नाश होगा।" इस प्रकार सब समाचार जानकर राम, लक्ष्मण और सुग्रीव सेना-सहित महेन्द्र पर्वत पर आये और दक्षिण में समुद्र के दर्शन किये।

: ४ :

उधर सवेरा होने पर लंका में विभीषण सोकर उठा तो उसकी माता नैकषी ने उससे कहा, "हे तात, तुम अपने सहोदर को शीघ्र समझाओ कि वह सीता को वापस कर दे।"

तब विभीषण रावण के पास पहुंचा और प्रणाम करके कहने लगा, "हे तात, तुमने इन्द्रादि देवों को वश में किया है। शिव के साथ कैलास को भी उठा लिया है। तुम्हारा प्रताप सब जानते हैं, लेकिन राम ने अकेले ही बाली को मारकर सुग्रीव को राजा बना दिया है। उन्होंने खर-दूषण को मार दिया है। उनके दूत ने लंका को जलाकर हमें बहुत दुःख पहुंचाया है। ऐसे राम के साथ युद्ध करना ठीक नहीं। तुम सीता को लौटाकर संधि कर लो।" रावण के नाना बूढ़े माल्यवान ने भी इस बात का समर्थन किया, लेकिन

रावण अत्यंत क्रुद्ध हो उठा और कहने लगा, "तू हमारे कुल में कलंक मत लगा। यदि जल में शिला तैर सकेगी, यदि सूर्य अंधकार की वृष्टि करेगा तभी मेरी हार संभव है।" यह कहकर उसने विभीषण को उठा दिया और सिर पर एक लात मारी। उस पर भी विभीषण शांत रहा और चार मंत्रियों के साथ वहां से चला गया। वह राम के पास पहुंचा। सब समाचार जानने के पश्चात् राम ने वहीं उसे लंका का राजा बनाकर अभिषेक कर दिया।

इसके बाद समुद्र को वश में करने के लिए राम ने एक महाबाण छोड़ा। उससे समुद्र की मर्यादा भंग हो उठी। भय से व्याकुल होकर समुद्र ने राम से कहा "हे भगवन्, अपने बाण को रोकिये और मेरे ऊपर सेतु बनाकर वानर-सेना को पार कराइये।"

राम ने ऐसा ही किया। सारी सेना समुद्र को पार करके लंका में सुवेल पर्वत पर जा उतरी और रावण के सैन्य बल की थाह लेने के लिए वानर इधर-उधर अट्टों पर चढ़ गये।

दूतों से राम की सेना का समाचार पाकर रावण व्याकुल हो गया। उसने माया से राम का मस्तक बनाकर सीता के पास भेजा। उसे देखकर वह मूर्च्छित हो गई। इधर उसने अपनी सेना को तैयार

होने की आज्ञा दी। बड़े-बड़े योद्धा फाटकों पर जम गये। उधर राम ने भी देवों को प्रणाम किया और अपनी सेना को आदेश दिया। दोनों ओर से घोर संग्राम होने लगा। कोटि-कोटि वानरों ने एक-एक द्वार घेर लिया। मेघनाद और राम का भयंकर युद्ध हुआ। उसने नागपाश फेंककर राम-लक्ष्मण को बांध लिया और रावण की आज्ञा से सीता को पुष्पक विमान पर ले जाकर राम को वैसी अवस्था में दिखाया। सीता विलाप करने लगी, लेकिन त्रिजटा ने उसे धीरज बंधाया। इधर विभीषण ने कहा, "ये बाण नहीं हैं। नागपाश हैं। गरुड़ से ही इनकी शांति हो सकती है।" यह सुनकर राम ने गरुड़ का ध्यान किया और उसे देखते ही नाग डर के मारे समुद्र में भाग गये। सब लोग बड़े प्रसन्न हुए।

युद्ध फिर होने लगा। धूम्राक्ष, अकम्पन, प्रहस्त आदि रावण के योद्धा रथ में काम आये। यह देखकर रावण ने सोते हुए कुंभकर्ण को जगाया। उसने कहा, 'माल्यवान और विभीषण ने तुम्हें ठीक ही कहा था। तुम अपने दोषों को नहीं देखते।" यह सुनकर रावण अत्यंत कुपित हुआ। कहने लगा, "तुम भी मेरी निन्दा करते हो। मेरे सामने नीति मत बघारो। युद्ध में कुछ करके दिखाओ।" कुंभकर्ण सब-

कुछ समझ गया और अकेले ही युद्ध के लिए चल पड़ा। उसे देखकर वानरों की सेना में हलचल मच गई। उसके सामने कोई नहीं ठहर सका। तब राम स्वयं युद्ध करने लगे। सुग्रीम, हनुमान, लक्ष्मण सब उनकी सहायता कर रहे थे। राम ने पहले कुंभकर्ण की दोनों भुजाएं काट डालीं और फिर हृदय में ऐन्द्र बाण मारकर उसका अंत कर दिया। रावण ने यह समाचार पाकर नरांतक आदि अपने अनेक पुत्रों को युद्ध के लिए भेजा, परंतु वे सब भी खेत रहे। घोर युद्ध के बाद लक्ष्मण ने अतिकाय को भी मार डाला। पुत्र के मरने का समाचार सुनकर रावण बहुत विलाप करने लगा, किन्तु मेघनाद ने उसे धीरज बंधाया और स्वयं युद्ध के लिए चल पड़ा। उसने अनेक कोटि वानरों को मारकर राम-लक्ष्मण को मूर्च्छित कर दिया। सेना में कोहराम मच गया। विभीषण के कहने पर हनुमान आकाश-मार्ग से औषधि लेने के लिए हिमालय पर गये, लेकिन जब पहचान न सके तब वह सारा पर्वत ही उखाड़ लाये। उस औषधि के प्रभाव से सब लोग स्वस्थ हो गये।

उधर अपनी सेना की बुरी दशा देखकर रावण विलाप करने लगा, "अतिकाय जैसा वीर मारा गया तब मैं राज्य और सीता को लेकर क्या करूंगा। जब

मेरे पुत्र ही नहीं रहे तब मैं जीवित रहकर क्या करूंगा। किसने सोचा था कि कुंभकर्ण मनुष्य से मारा जायगा और वानर लंका पर चढ़ाई करेंगे ?" मेघनाद ने उनको फिर समझाया और कहा, "आज मैं सब शत्रुओं को समझ लूंगा। आप क्यों भूल जाते हैं कि इन्द्र के स्वर्ग को जीतने के लिए हम दोनों ही काफी हैं।" इसके बाद मेघनाद के सैनिक विघ्नों की शांति के लिए मांगलिक कार्य करने लगे। ब्राह्मणों द्वारा उन्होंने ब्रह्मा की पूजा की। फिर मेघनाद ने कवच और शस्त्र पहनकर और रथ पर चढ़कर युद्ध-भूमि की ओर प्रस्थान किया। उसने वानर-सेना को मथ डाला और आकाश में उड़कर माया की सीता को तलवार से काटकर सबके सामने फेंक दिया। यह देखकर राम मूर्च्छित हो गये, लेकिन विभीषण ने समझाया, "हे राम, वह दुष्ट हम सबको मोह में डालकर निकुम्भिला देवी के चैत्य में हवन करने गया है। वह अग्नि में आहुति दे, इससे पहले ही उसका वध कर देना चाहिए, क्योंकि ब्रह्मा का ऐसा ही वचन है।" यह बात सुनकर राम ने लक्ष्मण को तुरन्त वहां जाने की आज्ञा दी। विभीषण के साथ वे सब लोग वहां पहुंचे और उन्होंने मंत्रों के साथ उसे अग्नि में हवन करते देखा। इन्द्रजीत ने उनकी ओर न देखकर

समाधि लगा ली, लेकिन वे उसे अनेक प्रकार से लल-कारने लगे और मारने लगे। विभीषण ने आगे बढ़कर उसे बहुत बुरा-भला कहा और लक्ष्मण ने उसके रथ, सारथि और घोड़ों पर प्रहार किया। अब तो भयंकर युद्ध छिड़ गया। मेघनाद ने आसुरास्त्र छोड़ा और लक्ष्मण ने महेश्वरास्त्र। अंत में लक्ष्मण ने रौद्रास्त्र के साथ ही महेन्द्रास्त्र को याद किया और उसने उसका सिर काट डाला। उसकी मृत्यु से देवता बहुत प्रसन्न हुए और रावण को इतना शोक हुआ कि वह अपनी ही सेना को मारने को उद्यत हो गया। इसके बाद दोनों सेनाओं में घोर युद्ध हुआ। राम क्रुद्ध हो उठे। आधे पहर में ही उन्होंने रावण की सेना में प्रलय मचा दी। राक्षसियां विलाप करके कहने लगीं, "रावण ने ब्रह्मा से वर मांगते हुए देवताओं से तो अभय मांग ली थी, पर मनुष्यों से अभय नहीं मांगी थी, इसी का यह फल है।" तभी भयंकर रथ पर चढ़कर रावण रणभूमि में आया। उसने बाणवर्षा कर लक्ष्मण को ढंक दिया और राम से युद्ध करने लगा। दोनों वीर नाना प्रकार के अस्त्र छोड़ने और काटने लगे। लक्ष्मण ने रावण की भुजा काट दी और विभीषण ने उसके घोड़ों को मार गिराया। रावण ने विभीषण पर एक भारी शक्ति चलाई, लेकिन लक्ष्मण ने उसे मार्ग में ही

काट डाला, जिससे भारी क्रोध में भरकर रावण ने अष्टघण्टा नामक महाशक्ति लक्ष्मण पर छोड़ी। लक्ष्मण निष्प्राण की तरह भूमि पर गिर पड़े। हनुमान की लाई हुई औषधियां अभी रखी थीं। उनके प्रयोग से लक्ष्मण फिर उठ बैठे।

रावण दूसरे रथ पर चढ़कर आया। तब इन्द्र की आज्ञा से मातलि राम के लिए भी रथ ले आया। राम उस पर बैठ गये। रावण ने उसपर पाशुपतास्त्र चलाया, जिसे राम ने इन्द्रास्त्र से काट डाला। रावण ने ब्रह्मा का दिया हुआ त्रिशूल फेंका, राम ने इन्द्र की दी हुई शक्ति चलाई और अनेक बाणों से रावण को बींध दिया। रावण मूर्च्छित होकर गिर पड़ा। तब सारथी रथ को दूर हटा ले गया। लेकिन जागते ही वह उसपर क्रुद्ध हुआ और फिर युद्ध करने के लिए आ गया। अब उसने माया से बहुत सिर बना लिये, जिन्हें राम अपने बाणों से काटने लगे। युद्ध की भयंकरता से पर्वत और समुद्र भी कांपने लगे। इस समय मातलि ने राम को उस अस्त्र की याद दिलाई, जिसे ब्रह्मा ने रावण को मारने के लिए बनाया था। राम ने उस ब्रह्मास्त्र से रावण की नाभि को बींध डाला और रावण पृथ्वी पर गिरकर मृत्यु को प्राप्त हुआ।

: ५ :

रावण को मरा हुआ देखकर विभीषण विलाप करने लगा, "हा ! आज दशानन पृथ्वी पर सो रहा है। मैंने पहले ही इस फल का अनुमान कर लिया था। जो अपने घमंड में उचित बात पर ध्यान नहीं देते हैं, उन्हें इसी प्रकार विपत्ति सहनी पड़ती है। मैं किस प्रकार धीरज रखूं ! तीनों लोकों के स्वामी मेरे भाई धरती पर सो रहे हैं। राहु सूर्य का ग्रास करके उसे फिर से उगल देता है, पर राम से ग्रस्त होकर कोई फिर नहीं पनपता। हे भाई, तुमने मेरी बात नहीं सुनी। अपने बल का घमंड करते रहे। तुमने सीता को नहीं लौटाया। विषयों को अपने वश में नहीं कर सके। आज इन्द्र निडर होकर हवि खायगा। वायु स्वेच्छा से बहेगी। सूर्य बिना बाधा के उदय होगा। लक्ष्मी लंका को छोड़कर विष्णु के पास चली गई। देवता क्रोध से अपने हथियार राक्षसों की ओर चमकाते हुए लंका में घुस रहे हैं। हे महाराज, तुम क्यों नहीं उठते ? तुम्हारे बिना मेरा चित्त शोक में डूबा जा रहा है। तुमसे रहित होकर मैं अनाथ हो गया हूं। तुम्हारे बिना यदि मैं राज करूंगा और जीवित रहूंगा तो मेरी तृष्णा को धिक्कार है। यदि तुम उत्तर नहीं दोगे तो मैं अपनी देह को नष्ट कर

डालूंगा। तुम्हारे गुणों को याद करके मेरा शोक बढ़ रहा है। कौन अपनी माला उतारकर मेरे गले में डालेगा ? कौन मुझे मीठा बोलकर आसन देगा ? मेरा क्षण-भर भी जीवित रहना कठिन है। जबतक जीऊंगा, लंका में नहीं जाऊंगा। हे भाई, अब जब कभी मेरे साथ मंत्रण करोगे तो मैं प्रिय बातें कहूंगा, अप्रिय नहीं।"

रनवास की स्त्रियां और पुरवासी भी रावण के लिए अनेक प्रकार के विलाप करने लगे। यह देखकर राम ने विभीषण से कहा, "रावण दानी, शत्रुओं के मस्तक पर बैठनेवाला, यज्ञ द्वारा देवताओं को और श्राद्ध द्वारा पितरों को तृप्त करने वाला था। उसने संग्राम में देवताओं को भी जीता था। उसके लिए शोक करना उचित नहीं। तुम्हारे जैसों का दुःख से अभिभूत होना भी ठीक नहीं। अपने स्वजनों को सहारा दो। तुम्हीं तो यह राज्य संभालने वाले हो।"

राम की यह बात सुन कर विभीषण ने कहा—"अपना सगा भाई कैसा भी हो, उसकी मृत्यु से दुःख होता ही है। ऐसे भाई के वियोग में वही जीवित रह सकता है, जिसका आप जैसा मित्र हो। आप न होते तो मैं पल-भर भी जीता न रहता।" इसके बाद विभीषण ने मंत्रियों से परामर्श किया और राजमहल

में जाकर अंतिम संकार के लिए सब सामान लाने की आज्ञा देते हुए कहा—"उत्तम वस्त्र, चंदन, आकाश-धूप, मालाएं, कपूर, केसर, काष्ठ, यज्ञ-पात्र, समिधा, कुशाएं सब ऋत्विजों से लिवाकर लाओ। रावण के शरीर को स्नान करा कर ऋत्विज लोग उसे माला पहनायें, अग्नि में हवन करें और सामवेदी सामगान करें।"

मंत्रियों ने ऐसा ही किया और विभीषण को भी अनेक प्रकार से राज-कार्य का उपदेश दिया। रावण की अग्नि-क्रिया और जल-क्रिया हो जाने के बाद राम ने स्वर्ण-कलश से विभीषण के मस्तक पर तिलक करते हुए कहा—"आज से तुम राक्षसों के राजा हो। मेरी बड़ी इच्छा है कि तुम इन्द्र के समान सुखी हो। अपनी जाति के बीच में रहते हुए सब प्रकार के आनंद करो और गुणियों से आदर प्राप्त करो। देवों की वंदना करते हुए तुम सोम-रस का पान करना और हिंसा का परित्याग करना। पुरवासियों के सब कार्य धैर्यपूर्वक करना।"

इसके बाद हनुमान सीता के पास पहुंचे। कहा, "हे वैदेही, तुम्हारे भाग्य की वृद्धि हो। त्रिलोक का कंटक रावण मारा गया। आज्ञा दो कि तुम्हें सताने-वाली इन पापिष्टा राक्षसियों को मार डालूं। हे

देवी, मैं अंतिम सेवा करना चाहता हूं।" सीता ने करुणा भरे स्वर में कहा, "हे कपि, इनका क्या दोष? ये बेचारी तो अपनी जीविका से अपने-आपको उऋण कर रही थीं। मैं इनका नाश नहीं होने दूंगी। यदि तुम मेरा प्रिय करना चाहते हो तो राम से जाकर कहो, 'हे राम, देवी उत्सुक हैं, उन्हें बुलवाइये'।"

तब राम ने गहरी सांस लेकर आकाश की ओर देखा। विभीषण से बोले, "अलंकृत करके सीता को लाओ।" विभीषण सीता के पास जाकर मधुर वचनों से विनती करते हुए कहने लगे, "हे वैदेही, शोक छोड़-कर प्रसन्न होओ। यहां से चलो। स्नान आदि से शुद्ध होकर सोने की पालकी में बैठो। वियोग से उत्पन्न शोक को दूर करके राम अश्वमेध-यज्ञ में तुम्हारे साथ दीक्षित हों। तुम्हारे पति राम की यह आज्ञा है। तुम शीघ्र उनके पास चलो।"

सीता ने वैसा ही किया। पति के समीप पहुंच-कर वह अत्यन्त शोकाकुल होकर रोने लगी।

तब राम ने उसके चरित्र के प्रति संदेह प्रकट करते हुए कहा, "मेरी यह इच्छा है कि तुम्हें स्वीकार न करूं। तुम यहां से जाओ। कहां यह रघु का प्रसिद्ध वंश और कहां तुम्हारा पराये घर में रहना!"

यह वचन सुनकर सीता ने राम से कहा, "साधा-

रण स्त्रियों के समान मेरे ऊपर जो तुम्हारा शक है उसे छोड़ो। मुझे शत्रु हर ले गये थे। मैं पराधीन थी। मेरे ऊपर मिथ्या कोप न करो। दैव का भय करो। मेरा शरीर राक्षस से हरा गया था, किन्तु चित्त की वृत्ति तुममें ही लगी रही थी। महाभूत इसके साक्षी हैं। हे लक्ष्मण, इस घोर दुःख का अंत चिता है। मुझ पापिनी को अग्नि भस्म कर दे और राम उससे प्रसन्न हों।"

राम की अनुमति से लक्ष्मण ने चिता तैयार की और उसकी प्रदक्षिणा करके सीता ने कहा, "हे राम, तुम और तुम्हारी सारी सेना सुने, तुमने मुझपर शंका की है, इसलिए मैं अपने शरीर को अग्नि में जला रही हूं। हे अग्नि, यदि मैं दुष्ट हूं तो मेरी देह को भस्म कर दो। यदि मैं विशुद्ध हूं तो मित्र की भांति मेरी रक्षा करो।"

तब सीता को हाथों में उठाकर अग्नि ने राम से कहा, "हे राम, साध्वी पत्नी पर तुमने शंका क्यों की? मैं इसको नहीं जला सका, इसलिए कि यह शुद्ध है। मैं केवल धर्म का साक्षी हूं। सीता रावण के यहां एकदम शुद्ध संकल्प से रही। क्या इतने दिन साथ रहकर भी तुमने उसके शील को नहीं जाना? यदि सीता में कोई दोष होता तो सूर्य पृथ्वी पर गिर

पड़ता । यदि तुम अपने मन के इस अंधकार को नहीं तोड़ोगे तो जन्मभर दुःख पाओगे ।

इस अग्नि-परीक्षा के समय ब्रह्मा और शिव आदि देवतागण भी वहां आ पहुंचे । उन्होंने भी राम को सीता की विशुद्धि के विषय में साक्षी दी । इस प्रकार सीता-संशोधन के बाद इन्द्र ने अमृत-वर्षा करके मरी हुई वानर-सेना को जीवित कर दिया । तब राम ने हनुमान से कहा, "हे कपि, तुम आकाश-मार्ग से अयोध्या में जाओ, माताओं और भरत से कहो कि रावण मारा गया । विभीषण का अभिषेक हो गया । सब लोग शीघ्र ही आने वाले हैं ।"

हनुमान के चले जाने पर राम ने सुग्रीव और विभीषण से कहा—"तुम भी कल मेरे साथ अयोध्या चलो और माताओं के दर्शन करो ।"

जैसे ही हनुमान से भरत ने राम के आने का समाचार सुना, वह प्रजा के साथ नगर के बाहर आये और राम को बड़े आदर और हर्ष के साथ अयोध्या में लिवा ले गये । अब राम ने भरत को अपना युवराज बनाया और अनेक प्रकार की सामग्री का संग्रह करके अश्वमेध-यज्ञ करना आरम्भ किया ।

दशकुमार-चरित

भाग १

१. जन्म और शिक्षा

पुराने समय में मगध देश में पुष्पपुरी या पाटलिपुत्र नाम की एक सुन्दर और लम्बी-चौड़ी नगरी थी। इस नगरी में राजहंस नाम के एक राजा राज करते थे। वीरता और रूप के कारण राजहंस का बड़ा नाम फैला था। वह बड़े दानी भी थे और उनके राज में हमेशा यज्ञ आदि धर्म के काम होते रहते थे। राजहंस की पत्नी का नाम बसुमती था। वह भी बहुत सुन्दर और बुद्धिमती थी। इस प्रतापी राजा के तीन मन्त्री थे, धर्मपाल, पद्मोद्भव और सितवर्मा। तीन मंत्री राज-काज और पढ़ने-लिखने में बड़े चतुर थे। कठिन-से-कठिन कामों को वे बड़े धीरज और विवेक से पूरा कर लेते थे। इन गुणों के कारण लोग इन्हें देवगुरु बृहस्पति से भी बड़ा मानने लगे थे।

इनके कई पुत्र थे। सितवर्मा के पुत्रों का नाम

था सुमति और सत्यवर्मा। पद्मोद्भव के सुश्रुत और रत्नोद्भव नाम के दो पुत्र थे तथा धर्मपाल के तीन बेटे थे सुमंत्र, सुमित्र और कामपाल। इनमें सत्यवर्मा की रुचि धर्म की ओर थी। वह तीर्थयात्रा पर निकल गया। कामपाल का स्वभाव बड़ा खराब था। वह बुरे आदमियों की सोहबत में रहने लगा और सबके समझाने पर भी वह दुनिया की सैर करने चला गया। रत्नोद्भव व्यापार के काम में बड़ा चतुर था। वह समुद्र पार चला गया। दूसरे पुत्र अपने काम में अच्छे निकले। तीनों बूढ़े मंत्री जब मर गये तब वे लोग उनके स्थान पर काम-काज करने लगे।

एक बार मगध के राजा राजहंस ने मालवा पर चढ़ाई की। मालवा के राजा मानसार भी बड़े मान वाले थे, पर इस लड़ाई में वह हार गये और उनकी सारी सेना मारी गई। राजा भी पकड़ लिये गये। बाद में मगध के राजा ने दया करके उन्हें छोड़ दिया और उनका राज भी लौटा दिया। किन्तु कुछ समय बाद राजहंस को पता लगा कि मानसार ने तपस्या करके भगवान् शंकर से एक ऐसी गदा प्राप्त कर ली है, जिसका वार कभी खाली नहीं जाता। इस गदा को पाकर वह बड़े घमण्डी हो गये हैं और मगध पर हमला करने को तैयार हैं। यह सुनकर राजा ने मन्त्रियों को

सलाह के लिए बुलाया। मंत्रियों ने कहा कि राजा मानसार के पास शिवजी की गदा है, इसलिए उससे लड़ना ठीक नहीं होगा। किले में बैठकर अपना बचाव ही करना चाहिए। लेकिन राजा न माने। बोले, "मैं युद्ध न करना किसी भी तरह ठीक नहीं समझता।" उसने मानसार का सामना करने का निश्चय किया। उधर मालवा की सेना भी मगध राज में घुस आई। मगधों और मालवों का यह युद्ध बहुत भयंकर था। इस युद्ध को देखने के लिए, मनुष्यों की कौन कहे, देवता भी आये और देख-देखकर अचरज करने लगे।

राजहंस युद्ध करने में बड़े कुशल थे। उनकी बराबरी इन्द्र से की जाती थी, लेकिन मालवपति मानसार ने इस बात की कोई परवा न की और अवसर पाकर उसने राजहंस पर शिवजी की दी हुई गदा से हमला किया। राजहंस इसके लिए तैयार थे। उन्होंने अपने तेज बाणों से उसे बीच ही में काट डाला। फिर भी उस गदा से उनके रथ का सारथी मारा गया। वह बेसुध होकर रथ में गिर पड़े और रास छूटे हुए घोड़े रथ को लेकर जंगलों में भाग गये। इस प्रकार मालवा के राजा की जीत हुई और उन्होंने विशाल मगध-राज पर कब्जा करके पाटलिपुत्र पर अधिकार कर लिया।

महारानी पहले ही विन्ध्याचल के जंगलों में भेज दी गई थीं। राजा के रणभूमि से चले जाने के बाद उनके मंत्री कुछ देर तो लड़े, पर वे भी हार गये और किसी तरह समाचार देने के लिए महारानी बसुमती के पास पहुंचे। अपनी सारी सेना नष्ट हो जाने और मगधराज के लापता होने की बात सुनकर रानी बड़ी दुखी हुईं। वह भी मरने को तैयार हो गईं, परन्तु मंत्रियों के समझाने पर उस समय उन्हें अपना विचार छोड़ना पड़ा। महाराज का किसी को ठीक-ठीक पता भी तो नहीं था। शायद वह जीवित ही हों। फिर उनके पुत्र होनेवाला था।

इस तरह उस समय तो वह चुप हो गईं, पर जब रात होने पर सब सो गये तो उनका दुःख फिर उमड़ पड़ा। इस बार वह अपने को नहीं संभाल सकीं और चुपचाप उठकर अकेले एक ओर चल दीं। अचानक वह उस जगह आ पहुंचीं, जहां राजा राजहंस के युद्ध के मैदान से भागे हुए रथ के घोड़े आकर टिके थे। वह मरने के लिए तैयार होकर आई थीं। एक पेड़ की डाल पर उन्होंने अपना दुपट्टा बांधकर फांसी का फन्दा तैयार किया और आखिरी बार महाराज को याद करके उन्हें पुकारने लगीं। उनके इस करुण विलाप को सुनकर जंगल गूंज उठा। महाराज का

रथ वहां से दूर नहीं था। रात की शीतलता और शान्ति के कारण उन्हें धीरे-धीरे होश आ रहा था। उन्होंने रानी का करुण विलाप सुना। वह तुरन्त उस आवाज को पहचान गये और धीमे स्वर में उसे पुकारने लगे। रानी ने वह पुकार सुनी तो हैरान होकर उधर दौड़ीं। चांदनी रात थी। महाराज को पहचानते उन्हें देर न लगी। कुछ देर तो इस अपार खुशी के कारण वह बोल न सकीं। फिर आवाज देकर उन्होंने पुरोहित और मंत्रियों को भी वहां बुला लिया। वे सब महाराज को पाकर बड़े प्रसन्न हुए। उन्होंने तुरन्त उनके घावों की मरहम-पट्टी की।

कुछ दिन में वह बिलकुल ठीक हो गये, पर हार हो जाने के कारण वह बड़े दुखी रहते थे। एक दिन, आगे क्या और कैसे करना चाहिए, इस बारे में सलाह करने वह महर्षि वामदेव के पास गये। इन्हीं महर्षि ने राजा को बताया कि उनके एक अत्यन्त प्रतिभावान पुत्र उत्पन्न होगा। वह वैरी का नाश करेगा। उसकी राह देखनी चाहिए।

ऐसा ही किया गया और समय पाकर राजहंस के घर सचमुच शुभ लक्षणोंवाले पुत्र का जन्म हुआ। उसका नाम राजवाहन रखा गया। राजवाहन के साथ-साथ मंत्रियों के भी पुत्र हुए। मंत्री सुमति के प्रमति,

सुमंत्र के मित्रगुप्त, सुमित्र के मंत्रगुप्त और सुश्रुत के लड़के का नाम विश्रुत रखा गया। कुमार राजवाहन और ये सब मंत्रिपुत्र साथ-साथ खेलते हुए धीरे-धीरे बड़े होने लगे।

मिथिलापति प्रहारवर्मा महाराज राजहंस के बड़े मित्र थे। वह भी उनकी ओर से मालवा के राजा से लड़े थे और हार गये थे। यही नहीं, जब वह अपने देश को लौट रहे थे तो उन्हें भीलों ने लूट लिया। उनके दो जुड़वां बच्चे थे। वे धाय के पास थे। इस भागदौड़ में वह पीछे रह गई। वहीं पर एक शेर ने उस पर हमला किया। एक बच्चा धाय के पास था, दूसरा उसकी बेटी के पास। इस हमले में धाय सबसे विछुड़ गई। उसे बस इतना याद था कि बच्चा उसके हाथ से छूटकर एक मरी हुई गाय के पेट में जा गिरा था और जब शेर उसे खाने को लपका तो किसी ने तीर मारा और शेर मर गया। बच्चे को शायद भील उठा ले गये। दूसरे पुत्र का उसे कुछ पता नहीं था।

एक ब्राह्मण ने जब धाय की यह कथा सुनी तो वह बच्चे को खोजने लगा। बच्चा भीलों के पास था। किसी तरह वहां से निकालकर वह उसे महाराज राजहंस को पालन-पोषण करने को दे गया। राजा ने दूसरे मंत्री-पुत्रों की तरह उसके पालन-पोषण की

व्यवस्था कर दी। उसका नाम उपहारवर्मा रखा गया। दूसरा राजकुमार, जो धाय की बेटी के पास था, राजा को एक भीलनी के पास मिला। उसे कुछ धन देकर वह उस बच्चे को भी ले आये। उसका नाम उन्होंने अपहारवर्मा रखा और पालन-पोषण के लिए उसे रानी को सौंप दिया।

इसी तरह एक दिन मुनि वामदेव के सोमदेव-शर्मा नाम के शिष्य महाराज राजहंस के पास एक और बालक लेकर आये। यह सुश्रुत के छोटे भाई रत्नोद्भव का लड़का था। रत्नोद्भव घूमते हुए काल-भवन टापू पर पहुंच गये थे। वहां बालगुप्त नाम के बड़े धनवान सौदागर रहते थे। उनकी लड़की का नाम सुवृत्ता था। इसीसे रत्नोद्भव का विवाह हुआ। व्यापार में वह चतुर था। बहुत दिन तक खूब धन कमाया। फिर उसे अपने देश और भाइयों की याद आई। वह पत्नीसहित जहाज में बैठकर चल दिया। मार्ग में जहाज डूब गया। सुवृत्ता धाय की मदद से किसी तरह एक किनारे पर जा लगी। कुछ दिन बाद उसी जंगल में उसने एक लड़के को जन्म दिया। यह वही बच्चा था जो शेर, हाथी और बन्दर के चंगुल में फंसकर भी बच गया था, लेकिन उसकी मां का कुछ पता नहीं था। न रत्नोद्भव का ही कुछ हाल

मालूम था। महाराज ने इस बच्चे को भी रख लिया। उन्होंने उसका नाम पुष्पोद्भव रखा और सुश्रुत को बुलाकर कहा, "देखो, यह तुम्हारे भाई रत्नोद्भव का बच्चा है। इसकी खूब अच्छी तरह देखभाल करो।"

कुछ दिन बाद एक रात को रानी बसुमति के पास एक यक्षिणी आई। वह वहुत सुन्दर थी। उसने कामदेव के समान एक सुन्दर बच्चा रानी को दिया। बोली, "यह तुम्हारे मंत्री धर्मपाल के पुत्र कामपाल का बेटा है। मेरा नाम तारावली है। मैं मणिभद्र की लड़की हूं। आप इसे लें और इसका पालन करें। आपका पुत्र चक्रवर्ती राजा होगा और यह उसकी सेवा करेगा।" यह कहकर वह रुकी नहीं, चली गई। रानी ने सब कथा राजा को सुनाई। राजा बड़े हैरान हुए, पर उन्होंने सुमित्र को बुलाकर बच्चा उसे सौंप दिया। इस लड़के का नाम अर्थपाल रखा गया।

इसके बाद एक दिन एक और विचित्र घटना घटी। ऋषि वामदेव का एक छात्र एक बालक को लेकर महाराज के सामने आया। महाराज से उसने निवेदन किया कि यह बालक आपके मंत्री सितवर्मा के पुत्र सत्यवर्मा की संतान है। सत्यवर्मा तीर्थ करते हुए अग्रहार नाम के एक गांव में जा पहुंचे थे। वहां उसने काली नाम की एक ब्राह्मण पुत्री से विवाह कर लिया

था। जब उसके कोई पुत्र नहीं हुआ तो सत्यवर्मा ने काली की छोटी बहन गोरी से शादी कर ली। इस गोरी के एक पुत्र हुआ, परन्तु डाह के कारण बड़ी बहन ने एक दिन गोरी के बच्चे को धाय समेत नदी में धकेल दिया। धाय बहते-बहते एक पेड़ के सहारे किनारे पर जा लगी। पेड़ पर एक सांप था। उसने धाय को काट खाया। लेकिन उसके मरने से पहले वह छात्र वहां पहुंच गया और बच्चे को ले आया। यह कथा सुनकर महाराज को सत्यवर्मा की बड़ी चिन्ता हुई। उन्होंने बच्चे को ले लिया और उसका नाम सोमदत्त रखा गया। इस बालक को महाराज ने सत्य-वर्मा के भाई सुमति को बुलाकर सौंप दिया।

इस प्रकार महाराज के मंत्रियों और उनके भाइयों के पुत्रों की एक अच्छी मण्डली जुड़ गई। ये सब साथ-साथ खेलते थे। सबने ऊंची शिक्षा प्राप्त की। सब लिपियां सीखीं। सब वेद, शास्त्र, इतिहास, काव्य, नाटक आदि पढ़े। सब तरह की नीतियां भी उन्होंने सीखीं। गाने-बजाने में प्रवीण हो गये। जादू-टौने के कौशल भी उन्होंने सीखे। घुड़सवारी और शस्त्रविद्या का अभ्यास उन्हें कराया गया। इन सबके साथ उन्हें चोरों की विद्या, जुए में कुशलता आदि तरह-तरह की कपट-कलाओं का अभ्यास भी कराया गया।

धीरे-धीरे वे सब युवा हुए। वे सब काम उत्साह और उमंग से करते थे। आलस उन्हें छू भी नहीं गया था। यह देखकर महाराज को बड़ी खुशी हुई और उन्हें विश्वास हो गया कि अब उनके बैरी उनका कुछ नहीं बिगाड़ सकते।

२. राजवाहन की पाताल-यात्रा

एक दिन किसी काम से ये सब राजकुमार महाराज को घेरे खड़े थे। इसी समय ऋषि वामदेव वहां आये। राजा ने बड़े आदर और भक्ति से उनका स्वागत किया। कुमारों ने भी उन्हें प्रणाम किया। मुनि आशीर्वाद देकर कहने लगे, "हे महाराज, आपके कुमार और उनकी इस मित्रमंडली को देखकर मुझे बड़ी प्रसन्नता हुई। ये सब कुमार सुशिक्षित, बलवान और सुशील हैं। ये आपकी इच्छा पूरी करेंगे। मेरे विचार से अब अच्छा समय है। राजवाहन को अपने मंत्रियों को लेकर दिग्विजय आरम्भ कर देनी चाहिए। ये लोग सब तरह के कष्ट और कठिनाइयां सहन करने तथा बड़े काम पूरे करने के योग्य हो चुके हैं।"

मुनि की यह बात सुनकर राजा ने दिग्विजय की आज्ञा दे दी। बस फिर तो तुरन्त युद्ध की तैयारियां

होने लगीं। होने क्या लगीं, पलक मारते ही हवा की-सी तेजी और फुर्ती के साथ, सब काम पूरा हो गया। उनकी तैयारी देखकर राजहंस को बड़ा भरोसा हुआ और उन्होंने सबको समझा-बुझाकर विदा दी। वे लोग रास्ते में तरह-तरह की घटनाएं देखते हुए आगे बढ़ने लगे। एक स्थान पर राजवाहन को ऐसा मनुष्य मिला जो लोहे-जैसा कठोर और काला था। उसके शरीर पर हथियार चलाने के निशानों के साथ-साथ जनेऊ भी लटक रहा था। समझ में नहीं आता था कि वह क्षत्रिय था या ब्राह्मण! इस रहस्यमय आदमी ने राजकुमार को अपनी रामकहानी सुनाते हुए कहा, "मैं उस ब्राह्मण-वंश का हूं जो भीलों के साथ रहते हैं और अपना कुलधर्म भूल चुके हैं। मैं भी भीलों के साथ लोगों को लूटा करता था। लेकिन एक बार एक ब्राह्मण पर मुझे दया आ गई। मैंने भीलों का विरोध किया, लेकिन वे नहीं माने। लड़ाई में उन्होंने मुझे मार डाला।

"ब्राह्मण की रक्षा में प्राण देने के कारण यमराज ने मेरी बुद्धि बदलकर मुझे फिर धरती पर भेज दिया। मैं फिर अपनी पुरानी देह में लौट आया। यहां एक और ब्राह्मण ने मेरी देखभाल की। मुझे शास्त्रों की शिक्षा दी। मैं सुधर गया।" इस ब्राह्मण का नाम

मातंग था । इसने राजकुमार को अकेले में ले जाकर बताया कि कैसे शिवजी ने उसे दर्शन देकर पाताल जाने की आज्ञा दी है । वह पाताल का राजा बनेगा, और इस काम में जो राजकुमार मदद करेगा, वह आजकल में आनेवाला है ।

यह कहकर मातंग ने राजकुमार से सहायता की प्रार्थना की । राजकुमार सारी कथा सुनकर शायद दैव-गति समझ गये और सहायता के लिए तैयार हो गये ।

रात को जब सब सो गये तो राजकुमार चुपचाप मातंग के साथ चल दिये । वह राजवाहन को शिव के बताये मार्ग से पातालपुरी ले गया । वहां जाकर मातंग ने एक यज्ञ किया और अपना शरीर अग्नि में डाल दिया । राजकुमार पहले तो यह सब देखकर घबराये; किन्तु थोड़ी देर में उन्होंने देखा कि मातंग दिव्य देह धारणकर कुंड के बाहर निकल आया है । उसी समय एक बड़ी रूपवती कन्या अपनी सहेलियों के साथ वहां आई । उस कन्या ने एक हीरा मातंग को भेंट किया और कहने लगी, "हे ब्राह्मण श्रेष्ठ, मैं असुरों के राजा की लड़की कालिन्दी हूं । मेरे पिता देवताओं से युद्ध में लड़कर मारे गये । मैं बहुत दुखी हुई तो एक महात्मा ने मुझे ढाढ़स बंधाया और कहा कि आपके समान

लक्षणोंवाला एक अजनबी पुरुष पाताल-लोक में आयगा और यहां का राजा बनेगा। वही पुरुष आपका पति भी बनेगा। सो अब आप यहां का राज संभालिये और मुझे भी चरणों की दासी बनाइये।" यह सुनकर मातंग ने राजवाहन की आज्ञा से कन्या से विधिपूर्वक विवाह कर लिया। और इसके बाद बड़े आनन्द से वहां का राज-काज चलाने लगा। राजवाहन को भी घर की याद आई। कालिन्दी ने मातंग को भूख-प्यास मिटानेवाली एक मणि भेंट में दी थी। वही मणि मातंग ने राजकुमार को दे दी और बड़े प्रेम से उसे विदा किया।

अपने स्थान पर आकर राजवाहन ने देखा कि वहां न तो उनकी मित्रमंडली है, न सेना। वे सब उनके गायब हो जाने के बाद उन्हें ढूंढ़ने चले गए थे। अब राजकुमार उनकी तलाश में इधर-उधर घूमने लगे। वह शिला नाम की एक नगरी में पहुंचे। वहां उन्हें एक सुन्दर बाग दिखाई दिया। उस बाग में घुस कर राजकुमार एक सुपारी के पेड़ के नीचे बैठकर सुस्ताने लगे।

इतने में राजवाहन ने डोली में किसी को आते देखा। उस डोली में दो स्त्री-पुरुष बैठे थे। डोलीवाला आदमी राजवाहन को देखते ही प्रसन्नता से नाच उठा।

वह बाहर निकला और उसने राजवाहन के पैर छुये। राजवाहन अब उसे पहचान गये। उनके मुंह से निकला, "ओह, प्रिय सोमदत्त, तुम हो!" यह कहकर राजवाहन ने उसे गले से लगा लिया। दोनों मित्रों की आंखों से आनन्द के आंसू छलक आये।

इसके बाद राजवाहन ने सोमदत्त से सब हालचाल पूछे। उत्तर में सोमदत्त हाथ जोड़कर अपनी कहानी सुनाने लगे।

३. सोमदत्त की आपबीती

सोमदत्त कहने लगे, "राजकुमार, जब आप गायब हो गये तब हम सब राजमंत्री अलग-अलग दिशाओं में आपका पता लगाने चल दिये।

"मैं चलते-चलते एक तालाब के पास पहुंचा। गरमी के दिन थे और मैं प्यास के कारण बेचैन हो रहा था, लेकिन मैंने जैसे ही पानी पीने के लिए हाथ बढ़ाया तो एक कीमती हीरा दिखाई दिया। मैंने उसे निकाल लिया। आगे चलकर एक दीन ब्राह्मण की कुटी पर आया। यहांपर पता लगा कि मैं वीरकेतु राजा के राज्य में आ गया हूं। इस राजा को लाट देश के राजा मत्तकाल ने घेर लिया था, क्योंकि उसने

अपनी सुन्दरी कन्या उसे देने से इन्कार कर दिया था, लेकिन अब लाचार होकर उसे अपनी कन्या वाम-लोचना मत्तकाल को देनी पड़ी। लौटते हुए वह शिकार करने को इस जंगल में रुक गया है। उधर वीरकेतु का मंत्री राजा के अपमान से बड़ा दुखी हुआ। वह राज्य की सारी सेना लेकर दूसरी जगह चला गया। अब वह मत्तकाल के विरुद्ध तोड़फोड़ के समान तैयारी कर रहा है।

"यह कथा सुनकर मुझे सब बातों का पता लग गया। मैंने वह हीरा तरस खाकर उस ब्राह्मण को दे दिया और थकान के कारण सो गया। ब्राह्मण वह हीरा पाकर बड़ा खुश हुआ और वहां से चला गया। जब मैं सोकर उठा तो देखा कि उस ब्राह्मण को कुछ सैनिक बांधकर ला रहे थे। उसपर हीरे की चोरी का आरोप था। उन्हें जब यह बताया कि हीरा मैंने दिया था तो सिपाहियों ने ब्राह्मण को छोड़ दिया और मुझे बांध लिया। वे मत्तकाल के सिपाही थे। मुझे उन लोगों ने जेल में डाल दिया। जहां वीरकेतु के मंत्री मानपाल के भी कुछ आदमी कैद थे। मैंने उनसे दोस्ती कर ली और सुरंग खोदकर उनके साथ निकल भागा। हम सब मंत्री मानपाल के पास पहुंचे। मत्तकाल को जब इन बातों का पता लगा तो उसने हमें वापस

मांगा, लेकिन मंत्री मानपाल ने मना कर दिया। फिर क्या था, लड़ाई ठन गई। मानपाल युद्ध में जीत गये और मत्तकाल मारा गया। इस जीत का समाचार जब वीरकेतु राजा के पास पहुंचा तब वहां बहुत आनन्द मनाया गया। मेरा बहुत सत्कार किया गया। वीरकेतु ने अपनी कन्या कुमारी वामलोचना का विवाह मेरे साथ कर दिया। राजा के कोई और सन्तान न थी। इसलिए उत्तराधिकारी मुझे बनाया। मैंने भी अपनी ओर से राजा की सेवा करने में कोई कसर नहीं रखी। इस प्रकार बहुत दिन तक आनन्द करता रहा।

"किन्तु, हे राजकुमार, आपकी याद आते ही मैं व्याकुल हो जाता था। आज मैं एक महात्मा के उपदेश से यहां शिवजी की पूजा करने आया था। यहां आना ऐसा शुभ हुआ कि आपसे भेंट हो गई।"

यह कथा सुनकर कुमार राजवाहन ने साथी सोमदत्त की चतुराई और वीरता की बड़ी सराहना की और अपनी पाताल-यात्रा का रोचक हाल सुनाया, इसी समय उनके एक और साथी पुष्पोद्भव वहां आ गये। फिर तो वे सब बड़े प्रेम से आपस में मिले।

अपना हाल सुनाकर राजकुमार राजवाहन ने पुष्पोद्भव से पूछा, "अब तुम बतलाओ कि कहां-कहां

गये थे ?" पुष्पोद्भव ने बड़ी नम्रता से हाथ जोड़े और अपना हाल सुनाने लगा ।

४. पुष्पोद्भव की आपबीती

पुष्पोद्भव ने कहना शुरू किया, "कुमार, आपको जिस समय वह ब्राह्मण एकान्त में ले गया था, तभी हम लोगों को खटका हुआ था । जब आपका पता नहीं लगा तब हम लोग समझ गये कि आप उसी के काम से कहीं चले गए हैं । लेकिन हम यह नहीं जानते थे कि आप किधर गये हैं, इसलिए हमने तय किया कि आपको खोजने के लिए एक-एक व्यक्ति एक-एक दिशा में जाय ।

"मैं भी एक ओर चला । चलते-चलते थककर मैं एक पहाड़ की तराई में एक पेड़ की छांह में बैठ गया। अभी कुछ देर ही बैठा था कि देखता क्या हूं कि ऊपर से एक आदमी गिरता आ रहा है । मैंने तुरन्त उसे अपने हाथों में ले लिया । वह बेहोश हो गया था ।जब होश में आया तो बोला, 'भाई, मैं मगध-नरेश के मंत्री पद्मोद्भव का पुत्र हूं । मेरा नाम रत्नोद्भव है । मैं रोजगार के सिलसिले में कालयवन द्वीप चला गया था । वहां एक सौदागर की लड़की से विवाह हो गया।

कुछ दिन बाद जब मैं जहाज से घर लौटने लगा तो जहाज एक भयानक तूफान में डूब गया। भाग्य से मैं जैसे-तैसे किनारे आ लगा। किन्तु पत्नी के डूब जाने के कारण मैं बहुत दुखी था। इसी बीच में एक साधु ने बताया कि सोलह वर्ष बाद मेरा दुःख दूर होगा। मैंने इसी आशा में सोलह वर्ष काट दिये। लेकिन फिर भी कोई आशा नहीं दिखाई दी तो मैं निराश होकर इस पहाड़ पर से कूद पड़ा।'

"इतनी रामकहानी सुनने के बाद सहसा मुझे किसी स्त्री का रोना-बिलखना सुनाई पड़ा। वहां जाकर देखा कि एक वृद्धा उस स्त्री को आग में जलने से रोक रही है। पूछने पर उसने बताया कि वह उस स्त्री की धाय है और वह युवती सौदागर रत्नोद्भव की पत्नी सुवृत्ता है। उसने जो कहानी सुनाई उससे मैं समझ गया कि सुवृत्ता अन्य कोई स्त्री नहीं, मेरी मां है। मैंने तुरन्त पैर छूकर उनको प्रणाम किया और सबको ले जाकर पिताजी से भेंट कराई। सब बड़े प्रसन्न हुए। मुझे तो उन्होंने बहुत ही प्यार किया। उसके बाद मैं ने उन्हें सब कहानी सुनाई और फिर उन्हें एक ऋषि के आश्रम में ठहराने का प्रबन्ध कर आपको ढूंढ़ने निकला। मैंने कुछ साथी इकट्ठे किये और साधु का वेश बनाकर खोजने लगा। मैंने करामाती सुरमे की

मदद से धरती में से ढेरों अशर्फियां निकालीं और घूमते-घूमते उज्जैन पहुंच गया। वहां बन्धुपाल नाम के सौदागर के यहां रहने लगा। यहां बालचन्द्रिका नाम की एक वैश्या की लड़की से मिलना हुआ। वह मालवा के राजा मानसार की लड़की की सहेली थी। राजा के बड़े लड़के दर्पसार तप करने कहीं चले गए थे और राजकाज उनके फुफेरे भाई चंडवर्मा और दारूवर्मा देखते थे। वे बड़े आवारा थे। दारूवर्मा की निगाह बालचन्द्रिका पर थी। वह उसे बहुत तंग करता था। इससे बालचन्द्रिका बहुत दुखी थी। बहुत सोच-विचारकर मैंने बालचन्द्रिका से कहा कि नगर में यह बात फैला दी जाय कि राजकुमारी की सहेली बाल-चन्द्रिका पर यक्ष आता है। उस यक्ष से जो पार पा सकेगा, उसीसे बालचन्द्रिका का विवाह हो सकेगा। यह बात सुनकर दारूवर्मा यदि डर गया तो ठीक होगा। अगर बल के घमंड में वह उसे बुलावेगा तो मैं उसे मार डालूंगा।

"मेरी यह योजना सफल रही। दारूवर्मा ने बाल-चन्द्रिका को बुला भेजा। मैं भी स्त्री के वेश में उसके साथ गया और वहां मैंने दारूवर्मा को मार डाला। अब तो नगर में यह बात फैल गई कि बुरे काम का नतीजा बुरा होता है। बाद में मेरा विवाह बाल-

चन्द्रिका के साथ हो गया ।"

यह कहानी सुनाकर पुष्पोद्भव ने कहा, 'बन्धुपाल ने जैसा शकुन विचारा था उसी के अनुसार मैं आया तो आपसे भेंट हो गई। मुझे अब जितनी खुशी हो रही है उसका वर्णन नहीं कर सकता।"

इस मिलन पर राजकुमार भी बहुत प्रसन्न हुए और सोमदत्त को शिवजी की पूजा के लिए भेजकर पुष्पोद्भव के साथ अवन्ती चले गए। पुष्पोद्भव ने राजकुमार का सबसे परिचय कराया और उन्हें ब्राह्मणपुत्र प्रसिद्ध किया। वे आराम से वहां रहने लगे।

५. राजवाहन और अवन्तिसुन्दरी

कुछ दिनों बाद धीरे-धीरे वसन्त ऋतु आ गई। लोगों के मन में तरह-तरह की उमंगें उठने लगीं। स्त्री-पुरुषों में ही नहीं, पेड़ और पौधों में भी परिवर्तन होने लगे। निर्मुण्डी, लाल, अशोक, टेसू और तिलों में कोंपलें तथा नई कलियां निकल आईं। इन नई कोंपलों तथा आम के बौर का स्वाद ले-लेकर कोयलों और भौरों की आवाज और भी सुरीली हो उठी। इनकी कूक तथा गुंजार बड़ी साफ व ऊंची हो गई।

सुना जाता है कि दक्षिण में मलय पहाड़ है। इस पर चन्दन के पेड़ बहुत उगते हैं। इन चन्दन वृक्षों पर सुगन्धि के कारण हमेशा सांप लिपटे रहते हैं। ये सांप चन्दन को महक से भरी हुई यहां की हवा को पी-पीकर उगला करते हैं। शायद इसीलिए दक्षिणी बयार इतनी पतली और महीन पड़कर बह रही थी।

इन्हीं दिनों एक बार मालवराज मानसार की पुत्री अवन्तिसुन्दरी भी आनन्द-विहार के लिए निकली। वह नगर के बाहर एक बहुत सुन्दर बगीचे में आई। उसकी प्यारी सहेली बालचन्द्रिका उसके साथ थी। उन दिनों वसन्त ऋतु में कामदेव की पूजा का आम रिवाज था। क्वारी लड़कियां यह पूजन बड़े चाव से किया करती थीं। राजकुमारी ने भी विधि-पूर्वक कामदेव की पूजा की। इसके बाद वह खेल-कूद और घूमने-फिरने में लग गई।

राजवाहन ने पुष्पोद्भव से कहा कि चलो, हम लोग भी राजकुमारी को देख आवें। पुष्पोद्भव तैयार हो गया। दोनों मित्र थोड़ी देर में बाग में पहुंच गये। बालचन्द्रिका ने इन लोगों को देखा तो बेखटके उधर ही चले आने का संकेत कर दिया। वे दोनों राज-कुमारी और उनकी सहेलियों की तरफ बढ़ चले।

दोनों ने एक दूसरे को देखा। दोनों बहुत सुन्दर थे। नतीजा यह हुआ कि दोनों एक दूसरे की तरफ खिचे। समय पाकर बालचन्द्रिका ने अवन्तिसुन्दरी से कहा, "राजकुमारी, यह जो महानुभाव सामने खड़े हैं, एक ब्राह्मण युवक हैं। यह तरह-तरह के कला-कौशल और शिल्प के जानकार हैं। रत्न परखने में निपुण हैं। तन्त्र और चिकित्साशास्त्र के पंडित हैं। आपको इनका आदर करना चाहिए।" राजकुमारी ने तुरन्त एक सुन्दर आसन बिछा दिया और विधिपूर्वक राजकुमार का सत्कार किया। राजकुमार का मन बराबर राजकुमारी की ओर खिच रहा था। वह सोचने लगे कि ऐसा क्यों हो रहा है। तभी सहसा उन्हें पिछले जन्म की याद आ गई। वह राजा शाम्ब थे और राजकुमारी उनकी पत्नी यज्ञवती थी। एक बार रानी के कहने पर उन्होंने एक हंस को पकड़कर उसके पैर बांध दिये थे। वह हंस एक ऋषि थे। उन्होंने राजा को शाप दिया, 'तुमने बिना कारण हमारा अपमान किया है। तुम पापी हो। जाओ, तुम्हारी स्त्री तुमसे अलग हो जायगी।' राजा के बहुत क्षमा-प्रार्थना करने पर ऋषि को दया आ गई। उन्होंने कहा, 'तुमने बुरे इरादे से हमें नहीं बांधा, सो इस जन्म में तुम्हें शाप का फल नहीं भोगना पड़ेगा। हां, अगले जन्म में दो

महीने तक तुम्हारे पैर बंधेंगे। उसके बाद तुम्हारी स्त्री तुम्हें मिल जायगी।'

यह कथा याद आते ही राजकुमार समझ गये कि यह राजकुमारी मेरे पहले जन्म की पत्नी यज्ञवती है। उन्होंने राजकुमारी से भी यह बात कही। उसे भी सब बातें याद आ गईं। अब तो दोनों एक दूसरे को प्रेम करने लगे। लेकिन तभी राजकुमारी की माता के आने का समाचार मिला। वे वहां से चले गए।

बाद में कुछ समय तक बालचन्द्रिका के सहारे दोनों में पत्र-व्यवहार चलता रहा। लेकिन इस बीच उनकी अवस्था बड़ी विचित्र हो गई। पुष्पोद्भव उनको राजकुमारी से मिलाने की बात सोचने लगा। थोड़े दिन बाद एक जादूगर अवन्तिका में आया और उसकी जादूगरी की प्रसिद्धि नगर भर में फैल गई।

मालवपति ने भी जादूगर को राजमहल में अपने करतब दिखाने के लिए बुलाया। इससे पहले ही पुष्पोद्भव जादूगर से मिले और सब बातें उसे समझा दीं। जादूगर ने उन्हें विश्वास दिलाया कि वह राजकुमार को अवन्तिसुन्दरी से मिला देगा। महल में उसने अनेक तमाशे दिखाये और बाद में एक ऐसा खेल दिखाया, जिसमें अवन्तिसुन्दरी का विवाह राज-

वाहन के साथ होता हुआ सब दर्शकों ने देखा। वे सोचने लगे कि यह सब जादू है। किन्तु यह सब थी वास्तविक घटना और जैसा कि पहले से तय हो चुका था, राजकुमार राजवाहन धीरे-से राजकुमारी के साथ भीतर के महल में चले गए और आनन्द से रहने लगे। किसी को असली बात का पता ही नहीं लगा।

६. राजवाहन पर क्या बीती ?

बहुत दिन तक राजकुमार सुखपूर्वक महल में रहते रहे, लेकिन एक दिन सब भेद खुल गया और चंडवर्मा ने राजकुमार को जेल में डाल दिया। जब राजकुमारी के माता-पिता को पता लगा कि उनका दामाद बड़ा सुन्दर है तो वे उसकी ओर हो गये। उनके बीच में पड़ने से राजकुमार के प्राण बच गये, लेकिन चंडवर्मा उन्हें अपने साथ अंग देश ले गया। वह अंगदेश के राजा सिंहवर्मा की बेटी अम्बालिका से विवाह करना चाहता था, पर राजा नहीं माने। वह सेना लेकर चढ़ आया। उस युद्ध में सिंहवर्मा हार गये और अम्बालिका चंडवर्मा के हाथ में पड़ गई। तभी अवन्तिसुन्दरी के भाई महाराज दर्पसार का संदेश चंडवर्मा को मिला। उन्होंने राजवाहन को मार

डालने और राजकुमारी को कैद में डालने की आज्ञा दी थी। चंडवर्मा ने राजकुमार को हाथी से कुचलवा देने की आज्ञा दी। लेकिन इसी बीच एक अद्भुत घटना घटी। राजकुमार के पैरों में जो जंजीर थी, वह आप-से-आप टूट गई। दो महीने बीत चुके थे और पूर्व-जन्म का शाप पूरा हो चुका था। वह जंजीर भी एक परी थी और शाप के कारण जंजीर बनी हुई थी। अपनी कहानी सुनाकर वह राजकुमार को सब समाचार देने चली गई। तभी पता लगा कि किसी व्यक्ति ने चंडवर्मा को मार डाला। भीतर-बाहर हलचल मच गई। इसी घपले में राजवाहन भी जेल से बाहर निकल आये। वहां उन्हें पता चला कि चंडवर्मा को मारनेवाला व्यक्ति अपहारवर्मा है तो वह बेहद प्रसन्न हुए।

इसी समय एक सेना ने चंडवर्मा की सेना को बाहर से आकर घेर लिया। अपहारवर्मा ने राजकुमार को बतलाया कि मेरे मित्र धनमित्र की सहायता से अंगराज सिंहवर्मा के सहायक राजाओं की सेना चंडवर्मा से टक्कर ले सकी है। अन्त में चंडवर्मा की सेना हार गई और अपहारवर्मा राजवाहन को चम्पानगरी के बाहर एक स्थान पर ले गया। वहां पहुंचकर दोनों महारथी बैठे ही थे कि उन्होंने धनमित्र को

आते हुए देखा। उसके पीछे-पीछे उपहारवर्मा, अर्थ-पाल, प्रमति, मित्रगुप्त, मंत्रगुप्त और विश्रुत भी आ गये। साथ ही मिथिला के प्रहारवर्मा, काशीराज, कामपाल तथा चंपा-नरेश सिंहवर्मा भी उपस्थित थे। राजवाहन उन सबको देखकर बहुत खुश हुए। उन्होंने सबका आदर किया और बड़े प्रेम से सबसे मिले। इस मिलन के बाद राजवाहन ने अपना हाल सबको सुनाया। फिर सोमदत्त और पुष्पोद्भव की आपबीती भी सुना डाली। इसके बाद वह एक-एक करके सब साथियों का हाल पूछने लगे। इनमें सबसे पहले अप-हारवर्मा ने अपनी कहानी सुनानी शुरू की।

७. अपहारवर्मा की आपबीती

अपहारवर्मा ने कहा, "आपको ढूंढ़ते-ढूंढ़ते मैं गंगा-किनारे आम के पेड़ के नीचे बैठे एक बाबाजी के पास जा पहुंचा। मुझे मरीचि ऋषि की तलाश थी, क्योंकि वह दिव्य दृष्टि से आपका पता बता सकते थे। उस महात्मा की दशा कुछ अजीब-सी थी। दिमाग कुछ बिगड़ गया था, पर उन्होंने मेरा स्वागत किया और जब मैंने उनसे मरीचि ऋषि का पता पूछा तो वह बोले, "अंग देश में काममंजरी नाम की एक

सुन्दर वेश्या रहती थी। उससे एक दूसरी वेश्या ईर्ष्या करती थी। एक दिन बातों-ही-बातों में वह काम-मंजरी से बोली कि तू तो ऐसी शेखी मार रही है जैसे 'मरीचि' को फंदे में फांस लाई हो। बस, इसी मामले में दोनों में शर्त लग गई। फिर क्या था, यह काममंजरी अपनी मां के साथ एक दिन मरीचि के पास गई और फूट-फूटकर रोने लगी। मां बोली, 'महाराज, यह मेरी लड़की है। मैं इसे वेश्या के काम में चतुर बनाना चाहती हूं, किन्तु यह तपस्वियों का जीवन बिताना चाहती है। असल में यह एक गरीब ब्राह्मण से प्रेम करती है, लेकिन हम गरीबों से प्रेम करने लगें तो कैसे चले। इसलिए जब मैंने इसे उससे मिलने से रोका तो यह रूठ गई और यहां वनवास के लिए भाग आई।'

"यह सब हाल सुनकर मरीचि को उन लोगों पर बड़ी दया आई। उन्होंने उस वेश्या की लड़की को बहुत समझाया। बोले, 'जंगल में रहना और तप करना तेरे बूते का काम नहीं है। इसे रहने दे। तेरे लिए तो यही ठीक है कि तू अपनी मां का कहना मान।'

"उनकी यह बात सुनकर वह वेश्या की लड़को बड़ी दुखो हुई और बोली, 'भगवन्, अगर आज यहां

जंगल में आपके चरणों का आसरा मुझे न मिला, तो मैं जल मरूंगी।' इस पर मुनि कुछ सोच में पड़ गये। थोड़ी देर बाद उसकी मां से बोले, 'अच्छी बात है, तुम इस समय तो घर लौट जाओ। कुछ दिनों में यह लड़की समझ जायगी कि तप का जीवन बिताना आसान काम नहीं है। मैं भी इसे समझाता रहूंगा'।'

"उनके जाने के बाद काममंजरी ने अपनी देह को सजाना छोड़ दिया। वह बड़े भक्तिभाव से वहां रहने लगी। उसके दिन भजन-चिन्तन में बीतने लगे। अपने ज्ञान के अनुसार वह शास्त्र और आत्मा-परमात्मा के बारे में भी चर्चा किया करती थी। आश्रम के सब काम उसने संभाल लिये थे। मरीचि भी इस प्रकार की वृत्ति से और कामकाज में लगन के कारण उससे संतुष्ट रहने लगे। धीरे-धीरे उसकी ओर उनका ध्यान विशेष रूप से जाने लगा। वह लड़की भी इस बात को ताड़ गई और उसने ऋषि को अपनी ओर खींचने का पूरा प्रयत्न किया। परिणाम यह हुआ कि धर्म, अर्थ और काम की चर्चा करते-करते मरीचि ऋषि एक दिन उस वेश्या के जाल में फंस गये। जब वह पूरी तरह काम-मंजरी के इशारों पर नाचने लगे तो एक दिन वह उन्हें लेकर काममहोत्सव में गई। तब वह विलासी के समान बने-ठने हुए थे। वहां काममंजरी ने अपने से

ईर्ष्या करनेवाली वेश्या से कहा कि देख, मैंने मरीचि को वश में किया है। मरीचि ऋषि यही हैं। राजा काममंजरी की इस विजय से बड़े प्रसन्न हुए और दूसरी वेश्या तो उसकी बांदी बन गई।

"वहां से घर लौटकर काममंजरी ऋषि से बोली, 'भगवन्, आपने दासी पर बड़ी कृपा की। अच्छा, यह तमाशा खत्म हुआ। अब मुझे अपने काम-काज में लगने दीजिये।'

"यह सुनकर ऋषि को बहुत दुःख हुआ। वह सब बात जान गये थे। पछताते हुए अपने आश्रम में लौट आये।"

यह कथा सुनाकर बाबा बोले, "महानुभाव, उस वेश्या ने जिस तपस्वी को ऐसा मूर्ख बनाया था, वह मैं ही हूं। मैं अब ठीक राह पर आ गया हूं। शीघ्र ही आपका काम करने योग्य हो जाऊंगा। तब तक आप चम्पा नगरी में निवास करें।"

"मैं मरीचि की कहानी सुनकर आगे बढ़ा। एक बगीचे में बने विहार के पास लाल अशोक के पेड़ के नीचे मैंने एक जैन साधु को देखा। पूछने पर पता लगा कि यह जैन साधु निधिपाल का पुत्र वसुपालित है। इसे भी काममंजरी ने अपने रूपजाल में फंसाकर कंगाल बनाया और फिर निकाल दिया। जैन बनने

पर भी हृदय को शान्ति नहीं मिली। उसे जैनों में ब्रह्मा, विष्णु, महेश, अग्नि, वरुण की निन्दा सुननी पड़ती थी। इससे उसे बड़ा दुःख होता था।

"मैंने उसे ढाढ़ास बंधाया और विश्वास दिलाया कि एक दिन वही वेश्या उसका सब धन लौटाने आवेगी और मैं आगे बढ़ गया। चम्पा नगरी में जाकर मैंने वहां के धनवान व्यक्तियों की रीति-नीति का पता लगाया। वे धनी थे, पर कंजूस बहुत थे। सब लोग उनसे तंग थे। इन कंजूस वणिकों को ठीक मार्ग पर लाने के लिए मैं चौर्यशास्त्र के आचार्य कर्णीसुत के अनुसार जुओं के अड्डों पर जाने लगा और पांसे के उस्ताद जुआरियों की सोहबत में मैंने बैठना शुरू किया। धीरे-धीरे जुए की सब चालबाजियां मैंने जान लीं और जुआ खेलने की असली कला सीख ली। जुए के इन अड्डों में मुझे बड़ा आनन्द मिलने लगा। मुझे जुए का चस्का लगानेवाले आदमी का नाम विमर्दक था। यह बड़ा भरोसे का आदमी था। उसे मेरा जिगरी दोस्त समझिये। इस विमर्दक के द्वारा ही चम्पा का सब अन्दरूनी हाल मुझे मालूम हुआ। शहर में कहां-कहां क्या-क्या काम होते हैं, यह सब उसीसे पता लगता था। मतलब यह कि शहर और यहां के आदमियों से अब मैं अच्छी तरह परिचित हो गया।

"इसके बाद मैं चोरी करने निकला। पहली ही रात को मेरा मिलना कुवेरदत्त नाम के रईस की बेटी से हुआ। बचपन में जिस व्यक्ति से उसकी शादी तय हुई थी वह अब गरीब हो चुका था। इसलिए उसके पिता ने उसका विवाह अर्थपति नाम के मनहूस माल-दार से करने का निश्चय किया था। वह नारी पहले युवक को चाहती थी और उसी के पास जाने को घर से निकली थी। मुझे देखकर वह डर गई, पर मैंने उसकी सहायता की और पुलिस से बचाता हुआ उसे उसके मनोनीत पति उदारक या धनमित्र के घर पहुंचा आया। यही नहीं, मैंने इस प्रकार की चालें चलीं, जिससे धनमित्र की फिर से प्रतिष्ठा होने लगी। राजा भी उसे मानने लगा और कुवेरदत्त ने भी धनमित्र को अमीर समझ उसीसे अपनी बेटी का विवाह करने की इच्छा फिर से प्रकट की।

"इसी बीच मेरा मिलना काममंजरी की बहन रागमंजरी से हुआ। वह वेश्या की बेटी होकर भी बड़ी सच्चरित और कलाविद् थी। मैं उससे विवाह करना चाहता था, पर उसकी मां और बहन काम-मंजरी ने रुकावटें डालीं। मैंने जिस 'जादू के बटुए' का ढोंग रचकर धनमित्र को धनी प्रसिद्ध किया था, उसीको रिश्वत देकर काममंजरी और उसकी मां

को चुप किया और रागमंजरी से शादी कर ली।

इनके बाद मैं अर्थपति के विरुद्ध वातावरण बनाने लगा और उसपर बटुए की चोरी का आरोप लगाकर उसे जेल में डलवा दिया। बटुआ काममंजरी के पास था। उसे बताया गया कि यह बटुआ तभी धन देता है जब चोरी और छल से प्राप्त धन उसके मालिक को लौटा दिया जाय। काममंजरी ने जैन साधु विरूपक का सब धन लौटा दिया। यही नहीं शेष धन भी उसने दान कर दिया। वह गरीब हो गई। तभी मैंने राजा के पास शिकायत की कि बटुआ अब काममंजरी के पास पहुंच गया है। तभी तो वह इतना दान कर रही है। इधर मैं काममंजरी से भी मिल रहा और उससे राजा के सामने कहलवा दिया कि यह बटुआ अर्थपति ने उसे दिया था। राजा अर्थपति को प्राणदण्ड देने को तैयार हो गये, पर बाद में धनमित्र के कहने पर उसकी सम्पत्ति जब्त कर उसे देश से निकाल दिया गया। अब धनमित्र का विवाह कुवेरदत्त की लड़की के साथ बिना किसी विघ्न-बाधा के हो गया।

"लेकिन अभी मेरी कथा का अन्त नहीं हुआ।

मैंने राजकुमारी अम्बालिका को पाने के लिए बड़ी चालें चलीं। मैं कई बार मुसीबतों में फंसा, पर

अन्त में राजकुमारी से भेंट हो गई।

"किन्तु विवाह से पहले एक और दुर्घटना हो गई। इन्हीं दिनों मालवा का चंडवर्मा सेना लेकर चंपा पर चढ़ाई करने आया। वह भी अम्बालिका को चाहता था। उसने अंगराज सिंहवर्मा को युद्ध में हरा दिया और अम्बालिका को वह अपने साथ ले गया। ठीक विवाह के मुहूर्त के समय मैं भी धनमित्र और दूसरी सेना के साथ विवाह-मण्डप में घुस गया। वहां मैंने चंडवर्मा को मार डाला और इस प्रकार अम्बालिका को बचा लिया।

"हे राजकुमार! इसके बाद मैंने जैसे ही राजकुमारी अम्बालिका को साथ लेकर कमरे में प्रवेश किया, उसी समय आपका परिचित स्वर सुनाई पड़ा। आपकी आवाज सुनकर मुझे बहुत प्रसन्नता हुई। यही मेरी रामकहानी है।"

राजकुमार यह कहानी सुनकर बहुत प्रसन्न हुए, और अपहारवर्मा की बड़ाई करने लगे। फिर वह उपहारवर्मा की ओर देखकर बोले, "अब तुम अपना हाल सुनाओ।"

दशकुमार-चरित

भाग २

८. उपहारवर्मा की आपबीती

उपहारवर्मा अपना हाल सुनाते हुए बोले—

"मैं आपकी खोज करता हुआ विदेहराज की ओर निकल गया। राजधानी मिथिला के निकट पहुंचा तो नगर के बाहर एक बुढ़िया मिली। मुझे देखते ही वह रोने लगी। मैंने रोने का कारण पूछा तो वह बोली, 'मिथिला के पिछले राजा प्रहारवर्मा की मगध-नरेश राजहंस से बड़ी मित्रता थी। उनकी दोस्ती बल और संबल की तरह प्रसिद्ध थी। इन दोनों राजाओं की रानियों, प्रियंवदा और वसुमति में भी बड़ी मित्रता थी। एक बार प्रियंवदा और प्रहारवर्मा अपने मित्र राजहंस से मिलने मगध देश गए। उन्हीं दिनों मालव-नरेश के साथ मगधराज की भारी लड़ाई हुई। मगध-राज हार गए। वहां से लौटने पर प्रहारवर्मा को पता लगा कि उनके राज्य को बड़े भाई संहारवर्मा के पुत्र

विकटवर्मा ने छीन लिया है। वह अपने भानजे से मदद लेने चले; पर मार्ग में भीलों ने उन्हें लूट लिया। उनके बच्चे मेरे पास थे। मेरे साथ मेरी लड़की भी थी, पर हम बच्चों को न बचा सके। मेरी बच्ची को भील उठा ले गये और बाद में जब लड़की मुझे मिली तो पता लगा कि उसके पास जो बच्चा था उसे भी भीलों ने छीन लिया था। हमने महाराज से सब हाल कहा तो वह बड़े दुखी हुए। उधर अपने भतीजों से युद्ध में भी वह हार गये। अब राजा-रानी कैद में हैं और मेरी लड़की पुष्परिका लाचार होकर पेट के लिए विकटवर्मा की रानी कल्पसुन्दरी की दासी बनी हुई है। यह रानी बहुत ही चतुर और सुन्दर है। विकटवर्मा इसका दास है।

"मैं समझ गया कि मेरे माता-पिता ही कैद में डाल दिये गए हैं। मैंने बुढ़िया से सब बातें कह दीं। वह बहुत प्रसन्न हुई। अपनी बेटी से मेरा परिचय कराया। मैं भी अपने मां-बाप को छुड़ाने का उपाय करने लगा। सबसे पहले मैंने पुष्परिका को कल्पसुन्दरी का मन विकटवर्मा के विरुद्ध करने के काम में लगाया। धाय को भी यही काम सौंपा। बाद में मैंने मन में सोचा कि पराई स्त्री को अपनी ओर मिलाने में कोई हर्ज तो नहीं है? पर मैंने यह सोचकर धीरज बांधा

कि मैं अपने माता-पिता को छुड़ाने के लिए ही ऐसा कर रहा हूं। इसी समय सपने में मुझे गणेशजी ने दर्शन दिये और कहा, 'पुत्र उपहारवर्मा, तू अपने मन में मैल और किसी तरह की ग्लानि मत ला; क्योंकि तू मेरा ही अंश है। यह कल्पसुन्दरी भी वास्तव में पूर्वजन्म की गंगा है। इस गंगा को हमारे पिता महादेवजो अपनी जटाओं से सहला-सहला कर खूब दुलार किया करते थे। एक बार ऐसा हुआ कि मैं गंगा के साथ खेल रहा था। वह विमाता होने के कारण मेरी बाल-लीला पर झुंझला उठी और शाप दे बैठी कि जा, तू मनुष्य-योनि में चला जा।'

"इस पर मैंने भी उसे शाप दे डाला और कहा, 'तू भी मनुष्य-योनी में जा और स्त्री-शरीर धारण कर। जिस प्रकार इस समय नदी होने से तेरा प्रयोग बहुत-से आदमी करते हैं, उसी तरह स्त्री-शरीर में भी तेरा उपयोग कई आदमी करेंगे।' मेरा शाप सुनकर गंगा ढीली पड़ गई। वह नरमी से बोली, 'अच्छा, तुमने भी मुझे इतना कठोर शाप दे डाला, पर अब तो दया कर दो कि पहले एक पुरुष के साथ रह चुकने के अनन्तर तुम्हारी ही चरण-सेवा का सौभाग्य मुझे मिले और फिर सदा ही तुम्हारा सहवास प्राप्त रहे।' इसलिए पुत्र उपहारवर्मा; यह प्रसंग कुछ बुरा नहीं है;

बल्कि स्वाभाविक और सुन्दर है। इस कल्पसुन्दरी के सम्पर्क को तुम किसी बुरी आशंका से मत देखो।' सपने में ये सब बातें सुनकर मेरे चित्त को बड़ी तसल्ली हुई। उधर पुष्परिका ने भी अपनी कूटनीति में सफलता प्राप्त कर ली। उसने न केवल कल्पसुन्दरी का मन विकटवर्मा की ओर से फेर दिया, बल्कि मेरा परिचय देकर उसे मेरी ओर आकर्षित भी कर दिया। यही नहीं, उसने प्रबन्ध करके कल्पसुन्दरी से एक बार मेरी भेंट भी करा दी। उस समय मैंने अनुभव किया कि कल्पसुन्दरी मुझसे अलग नहीं हो सकती। तब मैंने उसे समझाया कि तुम अकेले में राजा को मेरी सूरत-शक्ल से मिलता-जुलता हुआ चित्र दिखलाकर कहना, 'महाराज, यह सूरत पुरुष-सौन्दर्य की सीमा तक पहुंची है या नहीं?' वह सुनकर अवश्य 'हां' कहेंगे। तब तुम कहना 'एक संन्यासिनी को मैं जानती हूं। वह देश-विदेश घूमी हुई है। उसने यह तस्वीर देकर मुझसें कहा है कि यदि तेरे पति सुन्दर देह बनाना चाहते हैं तो पहले अपने मित्रों, मन्त्रियों और भाइयों के साथ सलाह कर लें। जब सब एक राग हो जायं तब उन्हें इस काम में हाथ डालना चाहिए।' राजा यह बात जरूर मान लेगा, तब तुम इस बगीचे के चौराहे पर यज्ञ कराना।

"बात-की-बात में यज्ञ होने तथा उसके द्वारा राजा को सुन्दर बनाने का समाचार सारे नगर में फैल गया। राजा ने मंत्रियों और मित्रों को बुलाकर परामर्श किया। सबने राजा के इस प्रस्ताव का समर्थन किया। यह बात सबको अच्छी लगी कि राजा विकटवर्मा महारानी के मंत्र-बल से देवताओं-जैसा रूपवान और राजसी शरीर प्राप्त करेंगे। अमावस के दिन रात्रि में यज्ञ-कर्म आरम्भ किया गया। जब यज्ञ हो रहा था तब मैं रानी का रूप धरकर यज्ञ-भूमि में पहुंचा और राजा से पूछा, 'हे राजन्, आप मुझे वचन दीजिए कि सुन्दर होने पर आप मेरी सौतों के चक्कर में तो नहीं पड़ोगे।' विकटवर्मा ने कसम खाकर कहा कि वह कल्पसुन्दरी को छोड़कर और किसी को नहीं चाहेगा। इसके बाद मैंने उससे राज के मुख्य भेद यज्ञकुण्ड के आगे बतलाने की आज्ञा दी। उसने तुरन्त चार मुख्य भेद इस प्रकार बतलाए—पहला, मेरे पिता के छोटे भाई प्रहारवर्मा कैद में हैं। उन्हें मैं विष द्वारा मारना चाहता हूं। दूसरा मैं पुंड्र देश को जीतना चाहता हूं। तीसरा, मुझे एक यूनानी सौदागर के पास अमूल्य हीरा होने का पता लगा है। मैं इसे लेना चाहता हूं। चौथा, मैं प्रहारवर्मा के साथी अनंतसीर को मरवा डालना चाहता हूं।

"उसके चौथे भेद को सुनते ही मैं अन्धकार में से निकल पड़ा और मैंने उसको छुरी से मार डाला। मारने के बाद मैंने उसके टुकड़े-टुकड़े कर डाले और उनको अग्निकुंड में डाल दिया। इस प्रकार अब मैं किंवदंती के अनुसार रूप बदला हुआ विकटवर्मा था। दूसरे दिन प्रातःकाल मैंने प्रजा को दर्शन दिये। मेरा रूप देख कर सबको आश्चर्य हो रहा था।

"मैंने दरबार लगाया और कहा कि रूप बदलने के साथ मेरा स्वभाव भी बदल गया है। सबसे पहले मैंने पिता को छोड़ने और उनका राज उन्हें सौंप देने का प्रस्ताव किया। इसके साथ अन्य अन्यायपूर्ण कार्य भी करने का मैंने इरादा छोड़ दिया। इस प्रकार सब लोगों को विश्वास हो गया कि मैं ही विकटवर्मा हूं तथा रूप के साथ-साथ मेरा स्वभाव भी बदल गया है। मेरे माता-पिता सब कुछ जानकर बड़े प्रसन्न हुए। मेरे पिता गद्दी पर बैठे और मुझे उन्होंने युवराज बनाया। इसी समय पिताजी के मित्र श्री सिंहवर्मा का एक मित्र मिला। उससे मालूम हुआ कि चंडवर्मा ने चम्पा पर हमला किया है। इस कार्य के लिए मैंने भारी सेना लेकर इस ओर कूच किया। यहां आने पर मेरे भाग्य ही खुल गए और आपके दर्शनों का लाभ हुआ।"

यह कथा सुनकर राजकुमार बड़े प्रसन्न हुए और फिर अर्थपाल से बोले, "अब तुम भी अपनी आपबीती सुनाओ।"

९. अर्थपाल की आपबीती

अर्थपाल अपना हाल सुनाते हुए कहने लगे—

"युवराज, मैं भी इन्हीं मित्रों के साथ-साथ निकला। अनेक देशों का चक्कर लगाते-लगाते मैं एक बार काशीराज की राजधानी वाराणसी (बनारस) में पहुंचा। वहां पर मुझे एक लम्बा-तड़ंगा और हट्टा-कट्टा आदमी मिला। वह देखने में बड़ा बहादुर लगता था। वह किसी कठिन काम के लिए तैयार हो रहा था; किन्तु उसकी आंखें रोने के कारण लाल हो रही थीं। यह देखकर मेरे मन में सहानुभूति पैदा हुई और मैंने उससे इस बात का कारण पूछा। तब उसने इस प्रकार अपना हाल सुनाया, "मैं एक गांव के मुखिया का लड़का हूं और मेरा नाम पूर्णभद्र है। बचपन में मुझे चोरी करने की आदत पड़ गई थी। अनेक बार चोरी करते पकड़ा गया और जेल भी गया। एक बार काशी में मैंने एक मालदार वैश्य

के घर चोरी की। चोरी का माल मेरे पास से बरामद होने के कारण मैं पकड़ा गया और मुझे मौत की सजा मिली। मुझे मारने के लिए एक मस्त हाथी लाया गया। उसका नाम मृत्युविजय था। यह हाथी बहुत भयानक था। इस अवसर पर यहां के प्रधान मंत्री कामपाल भी आये। इन्हींकी आज्ञा से हाथी मुझे कुचलने को छोड़ा गया। जैसे ही वह चिंघाड़ता हुआ मेरी ओर बढ़ा, मैं एकदम कूदकर उसके सामने आ गया। अगर्चे मेरे हाथ बंधे हुए थे, फिर भी मैंने एक घूंसा उसकी सूंड पर दे मारा। इस चोट से घबराकर हाथी पीछे हट गया। यह देखकर महावत को बड़ा क्रोध आया। उसने हाथी को फिर हांका; लेकिन मैंने भी पहले की तरह फिर घूंसा मारा। इस बार भी हाथी उलटकर भाग खड़ा हुआ। महावत के क्रोध की सीमा न रहीं। उसने अंकुश की चोटें कर-करके हाथी को फिर बढ़ाया, पर मेरी क्रोधभरी हुंकार सुनकर वह दूर से ही भाग गया। इस बार उसने महावत की मार की चिन्ता नहीं की।

"काशीराज के मंत्री ऊपर से यह तमाशा देख रहे थे। उन्होंने मुझे बुलवाया और कहने लगे, 'तुम तो बहादुर हो, इस हाथी को मौत से कम मत समझो। बड़ा खूनी है। लेकिन तुमने इसे भी भगा दिया।

देखो भाई, मेरी सलाह मानकर चोरी की आदत छोड़ दो और हम आर्य लोगों की तरह आचार-विचार से रहना शुरू कर दो। बतलाओ, क्या तुम ऐसा करोगे ?'

"मैं उनके व्यवहार से बहुत प्रभावित हुआ और मैंने तुरन्त कहा, 'जैसी आपकी आज्ञा।' इसके बाद वह मेरे साथ मित्रों के समान बर्ताव करने लगे और मैं सुख से उनके पास रहने लगा।

"एक दिन मैं बातों-ही-बातों में उनका पिछला इतिहास पूछ बैठा। उन्होंने बतलाया कि पाटलिपुत्र के महाराज रिपुंजय के धर्मपाल नाम के एक मंत्री थे। इनके दो लड़के थे, पहलो माता से सुमित्र और दूसरी माता से मैं कामपाल। बचपन से ही मैं आवारा और वेश्यागामी हो गया। जब बड़े भाई ने रोकथाम की तो मैं भागकर काशी चला आया। यहां भी काशीराज चंडसिंह की कन्या कांतिमती से मेरा खोटा सम्बन्ध हो गया। उसके एक पुत्र पैदा हुआ। भेद खुलने के डर से उसे श्मशान में डलवा दिया गया; लेकिन एक दिन भेद खुल ही गया और मैं पकड़ा गया। मुझे मौत की सजा मिली, लेकिन मैं बचकर भाग निकला और एक जंगल में पहुंचा। वहां एक स्थान पर एक रूपवती स्त्री वैठी रो रही थी। मैंने उससे

रोने का कारण पूछा। उसने मुझे दोनों हाथ जोड़कर प्रणाम किया और बोली, 'मैं यक्षों के राजा मणिभद्र की पुत्री तारावली हूं मुझे काशी के श्मशान में एक बालक पड़ा मिला था। उसे मैं महाराज राजहंस की रानी वसुमती को सौंप आई हूं। उस बालक की मां कान्तिमती और मैं कई जन्मों से आपकी पत्नी के रूप में सेवा करती रही हैं। आप एक जन्म में शौनक ऋषि, दूसरे में शूद्रक तथा अब कामपाल हैं। मैं पहले गोप-कन्या, फिर आर्यदासी और अब तारावली हूं।'

"इस प्रकार अपना किस्सा सुनाने के बाद अपनी विद्या से उसने वहां एक सुन्दर महल खड़ा कर दिया और हम दोनों बहुत समय तक सुख से उस महल में रहते रहे। कुछ समय बाद मैंने तारावली से काशी के राजा चंडसिंह से पुराने बैर का बदला लेने की बात कही। तारावली तत्काल मुझे चंडसिंह के महल में ले गई। मैं तलवार लेकर खड़ा हो गया और राजा को जगाया। मैंने उसे अपना परिचय दिया तो वह घबरा गया और उसने हर तरह से मेरी आज्ञा मानने की प्रतिज्ञा की। दूसरे ही दिन उसने मुझे राज्य का उत्तराधिकारी बना दिया और अपनी बेटी कान्ति-मती का विवाह भी मुझसे कर दिया। अब मैं यहां मंत्री बना हुआ हूं। वैसे राज्य मेरा ही है।"

मंत्री कामपाल की यह कथा सुनाकर उसने आगे कहा, "कुछ समय बाद चंडसिंह मर गये और उनकी गद्दी पर सिंहघोष बैठे। कामपाल इतने भले थे कि राज्य पर अपना अधिकार होने पर भी उन्होंने बालक सिंहघोष को गद्दी पर बिठाया; पर युवा होने पर चापलूस दरबारियों के कारण राजा सिंहघोष की मंत्री कामपाल से खटपट हो गई। इसी बीच में किसी कारण नाराज होकर तारावली भी उन्हें छोड़कर चली गई। तब वह बहुत दुखी हुए। इसी समय राजा ने उन्हें कारागार में डाल दिया। अब राजा की ओर से घोषणा हुई है कि उनका वध किया जायगा। महानुभाव, मैं इसी चिन्ता में रो रहा हूं। आज मंत्री जी मार दिये जायंगे।

"पूर्णभद्र की बातें सुनकर मुझे विश्वास हो गया कि मंत्री कामपाल अन्य कोई नहीं, मेरे पिता ही हैं। मैंने उसको बतलाया कि जिस पुत्र को यक्षकन्या ने महाराज राजहंस को सौंपा था, वह मैं ही हूं। फिर उसी के सहारे मैंने अपनी माता से सम्पर्क स्थापित किया। उन्हें सब बातें कहलवा दीं और बताया कि वह महाराज से सती होने की आज्ञा ले लें। उधर तो चिता, सती होने तथा पिताजी के वध की तैयारी होती रही, इधर मैंने एक सर्प पकड़ा और उसी मैदान

में जा पहुंचा, जहां पिताजी का वध होने को था। भीड़ का लाभ उठाकर मैंने उस सर्प को पिताजी के ऊपर छोड़ दिया।

"सर्प ने उन्हें काट खाया। मैंने चुपके से उनके घाव पर बन्द लगा दिया था, पर वह मरे हुए व्यक्ति का-सा बहाना करते रहे। सांप ने चांडाल को भी काटा था और वह मर गया। इस कारण राजा को मंत्री कामपाल के मरने का पूर्ण विश्वास हो गया। उन्होंने कान्तिमती को सती होने की आज्ञा दे दी। पूर्णभद्र की सहायता से हम इस लाश को घर ले आये और पिताजी की चिकित्सा कर उन्हें ठीक कर लिया। मुझे पाकर मेरे माता-पिता को अपार हर्ष हुआ।

"उधर पिताजी के सहायकों की कमी नहीं थी। हम सबने मिलकर एक सेना संगठित कर ली और सिंहघोष से युद्ध करने लगे। इसी बीच मैंने महल तक सुरंग खुदवाई। लेकिन वह सुरंग राजा सिंहघोष के कमरे में न जाकर वहां जा निकली, जहां कांतिमती के भाई चण्डघोष की बेटी मणिकर्णिका रहती थी। उसका सब हाल जानकर मैं सिंहघोष के महल में पहुंचा और सोते को उठा लाया। अब राज्य हमारा हो गया। सिंहघोष को हमने नहीं छोड़ा। मेरी मां ने मेरा विवाह मणिकर्णिका से करा दिया।

इस बात का वह बहुत पहले निश्चय कर चुकी थीं। इसके बाद मैंने सुना कि अंगराज के राज्य पर आक्रमण होने की तैयारी है। उसकी सहायता करने के लिए मैं इधर आया और अब यहां आपके दर्शन पाकर कृत-कृत्य हो उठा।"

यह कथा सुनकर राजवाहन बोले, "तुमने बड़ी बहादुरी का काम किया है, लेकिन अब सिंहघोष को छोड़ दो और उसे मेरे पास भेज दो।" फिर वह प्रमति की ओर मुड़े, बोले, "अब तुम्हारी बारी है। तुम अपनी कहानी सुनाओ।"

१०. प्रमति की आपबीती

प्रमति ने नमस्कार किया और आपबीती सुनाने लगा—

"आपकी खोज में चलते-चलते मैं विन्ध्याचल की तराई में पहुंच गया। रात हो चली थी, सन्ध्यावंदन आदि करके मैं वहीं सो गया। नींद में मैंने देखा कि मैं एक महल में पहुंच गया हूं। वहां बहुत-सी सुन्दर रानियां सो रही हैं। मैं भी वहीं सो गया। किन्तु सबेरे आंख खुली तो मैं उसी बियाबान जंगल में था। एक दुबली-पतली नारी मुझे जगा रही थी। वह

देखने में दुर्बल थी; पर उसके नेत्रों में चमक थी। उसे देखकर मेरे मन में आप-ही-आप भक्ति-भाव उमड़ आया और मैंने उसके पैरों पर सिर रखकर नमस्कार किया। उसने भी मुझे अपने लड़के की तरह तुरन्त उठाकर छाती से लगा लिया। मेरा मस्तक चूमा। बेहद खुशी के कारण उसकी बांहें थर-थरा गईं और पुत्र-स्नेह के कारण उसकी आंखों से आंसू बह चले, गला भर आया। उसने कहा, 'बेटा, मगध की रानी वसुमति ने शायद तुझे बताया होगा कि किस तरह मणिभद्र की लड़की उसकी गोद में बालक अर्थपाल को देकर चली गई थी। मैं वही स्त्री हूं और तेरी मां हूं। तेरे पिता कामपाल हैं, सुमंत्र उनके बड़े भाई हैं। उनके पिता का नाम धर्मपाल था। तेरे पिता से मैं व्यर्थ ही रूठ गई थी। मैं इस जंगल में अकेली रहती हूं। घर छोड़ आने के कारण एक राक्षस ने मुझे शाप दिया था कि मैं सालभर तक तुझे तंग करूंगा। साल पूरा होने पर वह उतर गया और मैं जाने लगी; पर तभी तू आ गया। तूने यहां के देवी-देवताओं से शरण मांगी। मैं तुझे अकेला कैसे छोड़ती? सोते-सोते को उठा ले गई और रास्ते में श्रावस्ती-नरेश के महल में सुला दिया और मंदिर में गई। वहां पार्वती ने मुझे पति के पास जाने को

कहा। मैं वहीं जा रही हूं।' उसकी ये सब बातें सुनकर मैंने हाथ जोड़कर प्रणाम किया। वह भी मुझे बार-बार प्यार करके वहां से चली गई।

"उसके जाने के बाद मुझे स्वप्न में मिलनेवाली राजकुमारी का ध्यान हो आया। उससे मिलने के लिए मैं तुरन्त श्रावस्ती की ओर चल दिया। जाते-जाते रास्ते में सौदागरों का एक भारी काफिला मिला। इन लोगों ने जहां पड़ाव डाला था, उस जगह मुर्गों के दंगल के कारण बड़ा हो-हल्ला मच रहा था। मैं भी भीड़ में घुसकर तमाशा देखने लगा। मेरे पास एक बूढ़ा ब्राह्मण बैठा हुआ था। बातों-ही-बातों में मेरी उससे दोस्ती हो गई। लड़ाई के अन्त में पछाही मुर्गे की जीत हुई। वह बूढ़ा ब्राह्मण भी पछांह का था। वह अपने देश के मुर्गे की जीत पर बहुत खुश हुआ। वह बहुत उदार और प्रसन्नचित्त आदमी था। मुझे अपने साथ डेरे पर ले गया। अगले दिन जब मैं श्रावस्ती की ओर चला तो थोड़ी दूर तक वह मेरे साथ आया और लौटते समय बोला, 'अच्छा भाई, मैं लौटता हूं। कभी काम पड़े तो मुझे याद करना।'

"मैं चलते-चलते श्रावस्ती जा पहुंचा और थकान के कारण नगर के बाहर ही बाग में, बेलों के एक

कुंज में जाकर सो गया। कुछ समय बाद हंसों की-सी बोली सुनकर मेरी नींद खुली। देखा कि एक युवती आ रही है। उसके हाथ में एक चित्र था और उस चित्र के व्यक्ति से वह मेरा मिलान कर रही थी। कुछ बातचीत के बाद वह मुझे अपने घर ले गई। उस चित्र से और उसकी बातों से मैं समझ गया कि यह युवती श्रावस्ती की राजकुमारी की सहेली है। मैंने उससे वह चित्र ले लिया और स्वप्न के आधार पर उस चित्रवाले व्यक्ति के पास ही ठीक राजकुमारी के समान चित्र बना दिया। अब तो उसने मुझसे सब बातें पूछीं। मैंने भी सब कुछ बता दिया। राजकुमारी मेरी याद में बड़ी परेशान थी। यह जानकर मैंने उस युवती को धीरज बंधाया।

"वहां से लौटकर मैं फिर उस ब्राह्मण के पास आया। उसे सब कथा सुनाई और उसी ब्राह्मण की सहायता से उसकी लड़की बनकर रनिवास में रहने लगा। मुझे अपनी बेटी बताकर वह कुछ दिन के लिए राजा के पास छोड़ गया। कुछ समय बाद मैं वहां से गायब हो गया और इस बार ब्राह्मण का होने वाला दामाद बनकर राजा के पास गया। ब्राह्मण ने राजा से लड़की मांगी। तभी पता लगा कि लड़की गायब है। राजा सन्नाटे में आ गये। ब्राह्मण बोला,

'महाराज, मैं तो इस नवयुवक को अपना दामाद मान चुका हूं। अब मेरी लड़की नहीं मिल रही है। मैं भी आत्महत्या करूंगा।' इस प्रतिज्ञा से राजा और भी घबरा उठा। उसने ब्राह्मण की बहुत खुशामद की। अंत में ब्राह्मण ने कहा, 'अच्छा राजन् मैं आपकी कन्या नवमालिका से ही इस लड़के का विवाह करके संतोष करूंगा।' राजा को लाचार होकर यह बात माननी पड़ी और मेरा विवाह इस प्रकार श्रावस्ती के राजा धर्मवर्धन की लड़की नवमालिका के साथ हो गया। राजा के कोई पुत्र नहीं था। उसका राज-पाट भी मुझे ही मिला।

"फिर जब मुझे चम्पा के महाराज को सहायता देने की आवश्यकता का पता लगा तो सब सेना लेकर मैं यहां आ गया। यहां आपके दर्शन करके बड़ी प्रसन्नता हुई।"

अपनी यह आपबीती कहकर प्रमति चुप हो गया। राजवाहन ने प्रमति की बड़ाई की और फिर मित्र-गुप्त की ओर देखकर बोले, "अच्छा, अब आप यहां पधारिये अपनी रामकहनी कहिये।"

११. मित्रगुप्त की आपबीती

मित्रगुप्त अपना हाल सुनाते हुए कहने लगे—

"घूमते-फिरते मैं सुम्हदेश की राजनगरी दामलिप्ति में पहुंचा। वहां एक बाग में एक चिन्तित-बदन कलाकार वीणा बजाकर मन बहला रहा था। मैं चुपचाप उसके पास बैठ गया और अवसर पाकर मैंने उसकी उदासी का कारण जानना चाहा। उसका नाम कोषदास था। उसने मुझे भला आदमी जानकर प्रेम से बैठाया और कहने लगा, 'मित्र, बात यह है कि सुम्हदेश के राजा तुंगधन्वा के कोई सन्तान नहीं थी। वह विन्ध्यवासिनी के इस मन्दिर में सन्तानप्राप्ति के लिए आराधना करने लगे। एक दिन देवी ने उन्हें सपने में बताया कि तेरे एक पुत्र होगा और एक कन्या। यह पुत्र अपने बहनोई की कृपा पर जिन्दगी बितायगा। इस कन्या को चाहिए कि सातवें बरस से लेकर अपना ब्याह होने तक हर महीने मेरे सामने कन्दुक-नृत्य किया करे और योग्य पति की प्राप्ति के लिए मेरी पूजा करती रहे।

"समय आने पर रानी मेदिनी के एक लड़का और एक लड़की हुई। लड़के का नाम भीमधन्वा और लड़की का नाम कंदुकावती रखा गया। आज वही

कंदुकावती देवी के सामने खेल दिखायगी। इसी राजकुमारी की सहेली चन्द्रसेना को मैं बहुत चाहता हूं; किन्तु राजकुमार भीमधन्वा मेरे काम में बाधा डालता है।'

"वह आदमी इस प्रकार कह ही रहा था कि इतने में एक स्त्री उसके पास आकर बैठ गई। वह चन्द्रसेना ही थी। उनकी बातों से मैं समझ गया कि उन दोनों में सच्चा प्रेम है। मैंने उनकी हर तरह से सहायता करने का वचन दिया।

"इसके बाद हमें राजकुमारी का नाच देखने का न्यौता देकर वह चली गई। हम दोनों भी पीछे-पीछे वहीं पहुंचे। मन्दिर के सामने एक ऊंचा-सा चबूतरा बना था। उस पर कीमती नग जड़े थे। वहां राजकुमारी खड़ी थी। उसका रूप देखकर मैं चकित रह गया।

"नृत्य का समय हो जाने पर राजकुमारी ने आगे की अंगुलियों से धरती को छुआ और फिर बड़ी शान के साथ तनिक झुककर भगवती विन्ध्यवासिनी को प्रणाम किया। इसके बाद उसने एक गेंद उठा ली और फिर तो तरह-तरह के सुन्दर करतब दिखाकर वह देर तक खेलती रही। उन खेलों को देखकर मुझ पर नशा-सा छाने लगा। वह खेल ही नहीं था, एक

सच्चा कलाप्रदर्शन था। उसकी समाप्ति पर उसने देवी विन्ध्यवासिनी की पूजा की और सब सखी-सहेलियों को साथ लेकर लौट चली। जाते समय उसने मेरी ओर देखा और मेरा मन उसी के साथ चला गया। किन्तु थोड़े ही समय में भीमधन्वा को इन सब बातों का पता लग गया। वह बनावटी प्रेम दिखाकर मुझे महल में ले गया। वहां उसने अपने नौकर-चाकरों की सहायता से मुझे पकड़ लिया और समुद्र में फिकवा दिया। किन्तु भाग्य साथ दे रहा था। जिस ओर मैं बहा जा रहा था उसी ओर एक जहाज चला आ रहा था। उसके नाविकों ने दया करके मुझे बचा लिया। वे मुसलमान थे।

"हट्टा-कट्टा आदमी समझकर वे लोग मुझे अंगूर की बेलें सींचने के लिए, गुलाम बनाने की बात सोचने लगे। लेकिन कुछ ही देर में एक दूसरे बड़े जहाज ने हमारे जहाज पर हमला कर दिया। उस युद्ध में हमारे जहाज के मुसलमान हार गये। पर मैंने उन लोगों को दिलासा दिया और कहा कि यदि मुझे छोड़ दिया जाय तो मैं तुम्हें जिता सकता हूं। अपने-आपको विपत्ति में समझकर उन्होंने मुझे छोड़ दिया।

बंधन खुलते ही मैंने सींग के धनुष की मार से दुश्मनों को मार-मारकर गिराना आरम्भ कर दिया

और अपना जहाज उनके जहाज से सटा दिया। कुछ ही देर में हमारे जहाज के साथियों ने दूसरे जहाज के नाविकों को बांध दिया। जब मैं उस जहाज के कप्तान को पकड़ने गया तो मुझे बड़ा आश्चर्य हुआ। वह भीमधन्वा ही निकला। वह मुझे देखकर बहुत लज्जित हुआ। मेरी जंजीर से ही भीमधन्वा बांधा गया। आगे कुछ दूर चलने पर मालूम पड़ा कि जहाजों में इंधन, मीठा पानी और अनाज समाप्त हो गया है। इस कारण बीच में एक टापू पर रुकना पड़ा। उतरकर मालूम हुआ कि वह टापू बहुत सुहावना है। पहाड़ी दृश्य, हरी-भरी घाटियां, मीठे पानी के झरने ! देखकर रास्ते की थकान दूर हो गई। आगे बढ़ा तो क्या देखा कि एक प्राकृतिक तालाब बना हुआ है। उसमें कमल खिले हैं। जी भरकर स्नान किया और खूब दूधिया कमल ककड़ियां खाईं। किन्तु जब तालाब के बाहर निकला तो देखता क्या हूं कि सामने एक विकराल ब्रह्मराक्षस खड़ा है। वह बोला 'तू कौन है ? कहां से आया है ?' मैंने बेधड़क होकर उसे सब कथा सुना दी और कहा, 'मैं ब्राह्मण हूं। तुम्हें आशीर्वाद देता हूं, भगवान् तुम्हारा मंगल करें।'

"वह राक्षस बोला, 'यह सब तो ठीक है, पर

पहले मेरे प्रश्नों का उत्तर दो। अगर न दे सकोगे तो मैं तुम्हें खा जाऊंगा।'

"मैंने कहा, 'अच्छी बात है, पूछो।'

"इसके बाद हम दोनों के सवाल-जवाब हुए। वह प्रश्न पूछता और मैं उसका जवाब देता था :

कौन क्रूर है जग में? अतिशय क्रूर हृदय है नारी। गृही चाहता क्या?—प्रिय पत्नी गुणवंती हित-कारी। 'काम' किसे कहते?—यह मन का बस है एक विकल्प। कठिन कार्य का साधन क्या है?—बुद्धिसहित संकल्प।

"इन चारों प्रश्नों के उत्तर में मैंने धूमिनी, गोमिनी, निम्बवती और नितम्बवती नारियों के उदा-हरण दिये। मेरे उत्तर से ब्रह्मराक्षस को बहुत संतोष हुआ। उसने मेरी अच्छी आव-भगत की।

"इतने में हम दोनों ने आकाश की ओर देखा कि एक राक्षस किसी नारी को पकड़कर लिये जाता है। मैंने ब्रह्मराक्षस से उसे बचाने की प्रार्थना की। वह तुरन्त उससे भिड़ गया। युद्ध में वे दोनों मारे गए। इधर मेरे आश्चर्य का ठिकाना नहीं रहा, जब मैंने देखा कि वह स्त्री कंदुकावती ही है। उसे लेकर मैं पहाड़ से नीचे आया और जहाज पर सवार हो गया। जब हवा उल्टी दिशा में बहने लगी तब हमने जहाज

का लंगर उठाया। जहाज फिर दामलिप्ती नगर में पहुंच गया। नगर में पहुंचकर देखा कि जनता रो-पीट रही है। पता लगा कि लड़का-लड़की के मर जाने पर राजा तुंगधन्वा रानी के साथ उपवास करके प्राण छोड़ने के इरादे से गंगा के किनारे जा रहे हैं।

"यह सब सुनकर मैं सीधा महाराज के पास पहुंचा और सब हाल सुनाया। भीमधन्वा मेरे जहाज पर कैद था, कन्दुकावती भी मेरे साथ थी। मैंने दोनों को महाराज को सौंप दिया। इन्हें पाकर वह बहुत प्रसन्न हुए। उन्होंने कन्दुकावती का विवाह मेरे साथ कर दिया। अब मेरे कहने से भीमधन्वा ने भी चन्द्रसेना का विवाह कोषदास के साथ होने में बाधा नहीं डाली।

"कुमार, इन सब कामों से छुट्टी पाते ही मुझे राजा सिंहवर्मा के संकट का पता लगा और मैं तुरन्त सहायता के लिए चल दिया। यहां आते ही आपके दर्शन हुए। मेरे लिए तो यह एक आनन्द मेला-सा लग रहा है।"

राजवाहन ने मित्रगुप्त की बड़ाई करते हुए मंत्र-गुप्त की ओर देखा और उसकी आपबीती सुनने की इच्छा प्रकट की।

१२. मन्त्रगुप्त की आपबीती

मन्त्रगुप्त कहने लगे, "राजकुमार, आपके इस तरह अचानक लोप हो जाने पर जब सब अलग-अलग दिशाओं में खोजने चले तो मैं भी आगे बढ़ा और चलते-चलते कलिंग राज की सीमा तक पहुंच गया। जिस समय मैं नगर के बाहर मरघट के पास पहुंचा, उस समय रात हो गई थी। लाचार होकर वहीं एक पेड़ के नीचे सो रहा। रात बड़ी डरावनी थी, खूब हवा चल रही थी और कड़ाके का जाड़ा पड़ रहा था। सबेरा हुआ, पर मेरी आंखों में नींद भरी हुई थी और मैं खुमारी में पड़ा रहा। इतने में सुना कि एक नौकर और उसकी स्त्री किसी अघोरी की चर्चा कर रहे हैं। मैं उठकर उसके पीछे चल पड़ा। थोड़ी दूर पर क्या देखता हूं कि एक अघोरी बैठा है। वह हड्डियों की माला पहने था और उसकी सूरत डरावनी थी। उसके सामने अग्नि जल रही थी। वह मंत्र बोल-बोलकर तरह-तरह की कड़ियां, जौ, तिल आदि उसमें डालता जाता था। मैं पेड़ की आड़ से सबकुछ देखता रहा।

थोड़ी देर में उसने उस नौकर को राजा कर्दन की लड़की कनकलेखा को लाने की आज्ञा दी। नौकर ने ऐसा ही किया। उसे देखकर अघोरी बहुत प्रसन्न हुआ।

वह उठा और उसकी बलि चढ़ाने के लिए एक तलवार रगड़-रगड़कर तेज करने लगा। बेचारी राजकन्या बुरी तरह से सिर पीट रही थी; पर कौन सुनता था। लेकिन मुझसे यह काण्ड न देखा गया। जैसे ही उस अघोरी ने उसका सिर काटने के लिए तलवार उठाई, मैं झपटकर सामने आ गया और उसके हाथ से तलवार छीनकर अघोरी को ही काट डाला। बाद में मुझे पता लगा कि राजकन्या को लानेवाला आदमी राक्षस था तथा अघोरी के अनुचित कामों से दुःखी था। वह मुझसे बोला, 'यह नीच इन्सान नहीं था, नरक का कीड़ा था। इसे आदमियों के बीच एक काला-कलूटा कौआ समझिये। आपने अच्छा किया जो इसे मार डाला। अब आप आज्ञा दीजिये कि मैं आपकी क्या सेवा करूं?'

"मैंने उससे राजकन्या को उसके महल में पहुंचा आने को कहा। यह सुनकर राजकुमारी की आंखों से आंसुओं की धार बहने लगी। पर वे खुशी के आंसू थे। वह मधुर स्वर से मुझसे बोली, 'महानुभाव, आपने इस दासी को मौत के मुंह से बचाया है। अब इसे अकेली क्यों छोड़ रहे हैं? मैं आपके चरणों की पूजा किया करूंगी। आप भी मेरे साथ चलने की कृपा करें।' उसकी ऐसी मीठी-मीठी बातें सुनकर मैं विवश हो

गया। मैंने राक्षस से कहा कि वह मुझे भी ले चले। फिर क्या था, राक्षस ने हम दोनों को पलक मारते-मारते महलों में पहुंचा दिया। बहुत दिनों तक वहां हम आनन्दपूर्वक रहते रहे। किसी को कुछ पता नहीं लगा। एक बार राजा, उसका परिवार और सब नगर-निवासी समुद्र के किनारे आनन्द-विहार के लिए गये। वहां जाकर सब मस्त हो गये और तभी पड़ौसी आंध्र देश के राजा जयसिंह ने अचानक आक्रमण कर राजा-रानी और कनकलता को पकड़ लिया। मैं चिंता में पड़ गया कि क्या किया जाय ? कुछ समय बाद आंध्र देश का एक ब्राह्मण मुझे मिला। वह अपने देश की बहुत-सी बातें बताने लगा। उसने बतलाया कि आंध्र देश का राजा जयसिंह कनकलता से विवाह करना चाहता है; किन्तु राजकुमारी किसी यक्ष के वश में है, इस कारण राजा कुछ नहीं कर पाता है। बस मुझे एक उपाय सूझा। मैंने जटाएं बनाईं और पहुंचे हुए साधु का रूप बनाकर आंध्र देश पहुंचा। राजधानी में पहुंचकर मैंने कुछ चेले भी इकट्ठा कर लिये और एक तालाब के किनारे धूनी रमा कर बैठ गया। शिष्य-मंडली मेरा यश फैलाने लगी और मेरे त्याग की बड़ाई भी होने लगी; यहां तक कि राजा के कानों तक मेरी करामातों की बातें पहुंच गईं। वह तो यक्ष को भगाना

चाहते ही थे। वह भी मेरे पास आने लगे और मेरी पूजा करने लगे। एक दिन उन्होंने अपने मन की बात मेरे सामने रक्खी। मैंने राजा से अर्धरात्रि में मंत्रों से शुद्ध किये हुए तालाब में स्नान करने को कहा और बतलाया कि ऐसा करने से वह सुन्दर हो जायगा। राजा मान गया। तीन दिन बाद ऐसा करना निश्चित हुआ। इस बीच मैंने एक बियाबान जगह से तालाब तक एक सुरंग बनाई। मैंने राजा से यह भी कहा साधु-संत एक स्थान पर बहुत दिनों तक नहीं रहते, इसलिए मैं अब यहां से चला जाऊंगा। राजा मेरे त्याग से बहुत प्रसन्न हुआ। मैं विदा लेकर जंगल में सुरंग वाले मार्ग से ठीक राजा के मुहूर्त्त वाले समय में तालाब में घुसा। उधर जब राजा ने डुबकी लगाई तो मैंने भीतर-ही-भीतर उसे पकड़ लिया और मार डाला। जब मैं बाहर निकला तो अन्य राज-कर्मचारियों ने मुझे मंत्र-बल से बदला हुआ राजा समझकर मेरा आदर किया। मैं आदरपूर्वक महलों में ले जाया गया।

"दूसरे दिन दरबार लगा। उस दिन मुझे राज-महल में कनकलता की पक्की सहेली शशांकसेना मिली। मैंने अकेले में बुलाकर उससे बातचीत की। वह सब रहस्य समझ गई और बहुत प्रसन्न हुई।

इधर कलिंग के राजा कर्दन को भी मैंने जेल से छुड़ा दिया। कलिंग-नरेश ने प्रसन्न होकर मेरा विवाह कनकलता से कर दिया। इस प्रकार मैं एक तरह से कलिंग के साथ-साथ आंध्रदेश का भी राजा हो गया।

"अब जब मैं इतने बड़े देशों का राजा हो गया तब मुझे अंगराज के राज्य पर आक्रमण का समाचार मिला। मैं तुरन्त एक भारी सेना लेकर उनकी सहायता करने के लिए दौड़ा। यहां आकर आपके दर्शन हो गये। मुझे इससे बढ़कर प्रसन्नता और क्या हो सकती है।"

राजकुमार यह कहानी सुनकर बड़े प्रसन्न हुए और विश्रुत की ओर ऐसे देखा, मानो कह रहे हों, "आइये अब आपकी बारी है।"

१३. विश्रुत की आपबीती

विश्रुत अपना हाल सुनाते हुए बोले :

"मैं आपकी खोज करते-करते विन्ध्याचल के जंगलों में जा पहुंचा। वहां एक कुएं के पास एक बालक मुझे मिला। उसकी अवस्था आठ वर्ष की थी और वह बहुत मलिन हालत में था। मुझे देखकर बोला, 'मेरी मदद कीजिए। मेरे साथ एक बूढ़ा था।

वह मुझे पानी पिलाने की कोशिश में इस कुएं में गिर पड़ा।' मैंने किसी तरह उसे निकाला। फिर फल तोड़कर खिलाये, पानी पिलाया। इसके बाद बूढ़े ने अपनी कहानी सुनाई।

"विदर्भ देश में महाराजा भोज के वंशज पुण्य-वर्मा राज्य करते थे। वह बड़े योग्य और पुण्यात्मा थे। उनके बाद उनके पुत्र अनन्तवर्मा गद्दी पर बैठे। वह भी प्रभावशाली थे; किन्तु राजनीति कम जानते थे। वृद्ध मंत्री के कहने पर उन्होंने उस ओर ध्यान देने का वचन दिया; किन्तु विहारभद्र नामक चापलूस दरबारी उन्हें आनन्द, भोग और आराम की बातों की ओर ही लगाये रखता था। वह कहा करता था कि वृद्ध मंत्री, पुरोहित, पंडित आदि अपने स्वार्थ के लिए धर्म, पूजा, परोपकार करने का उपदेश देते हैं। राजा का मुख्य काम आराम और मौज करना है। राज-काज के झंझट मन्त्रियों को देखने चाहिए। उसकी बातें सुन-सुन कर राजा आलसी और विलासी होते गए। यह देखकर वृद्ध मंत्री वसुरक्षित चिन्ता में पड़ गए, पर बहुत सोच-विचार कर वह अलग जा बैठे।

"इधर अश्मक देश के राजा ने अपने वृद्ध मंत्री इन्द्रपालित के लड़के चन्द्रपालित के साथ कुछ कला-कार स्त्रियां तथा राजनीति के भेद जाननेवाले अनेक

भेदिये विदर्भ-राज्य का ठीक-ठीक पता लगाने भेजे। चन्द्रपालित ने अनन्तवर्मा को बुरे मार्ग की ओर ले जाने में पूरी मदद की। राजा की देखा-देखी प्रजा भी उधर ही बढ़ी। चारों तरफ अराजकता फैल गई। मौका पाकर अश्मकराज वसन्तभानु ने भील राजा भानुवर्मा, मुरल के राजा वीरसेन, ऋचीक नरेश एक-वीर, कोंकणराज कुमारगुप्त, नासिकपति नागपाल और कुन्तल-नरेश अवन्तिदेव से मिलकर राज्य पर आक्रमण कर अनन्तवर्मा को कैदी बना लिया। यही नहीं, बाद में चालाकी से सब राजाओं को लड़ा कर वह लूट के सारे माल का मालिक बन गया। अब राज्य में केवल स्वामिभक्त मंत्री वसुरक्षित ही सुरक्षित रह गए थे। उन्होंने एक चुनी हुई सेना इकट्ठी की।

"यह कहते-कहते वृद्ध ने लड़के की ओर इशारा कर बताया, 'यह लड़का अनन्तवर्मा का पुत्र है। इसका नाम भास्करवर्मा है। मंत्री वसुरक्षित इसे, इसकी बहन और मां महारानी वसुन्धरा को लेकर सेना के साथ चलते हुए रास्ते में मर गये। महारानी वसुन्धरा महा-राज अनन्तवर्मा के भाई मित्रवर्मा के पास चली गई; पर मित्रवर्मा के मन में पाप आ गया। रानी ने तब मुझे बुलाकर इस बच्चे को मुझे सौंप दिया और देख-भाल करने की प्रार्थना की। अब मैं इस बच्चे को

दुश्मनों से बचाए फिर रहा हूं। महारानी अब अपनी लड़की मंजुवादिनी के साथ शत्रु के चंगुल में हैं। आप कृपा कर कुछ उपाय कीजिये जिससे इस बालक, इसकी माता और बहन का उद्धार हो सके।'

"मैं सोचने लगा कि क्या किया जाय ? इतने में एक शिकारी से पता लगा कि चण्डवर्मा का भाई प्रचण्डवर्मा माहिष्मती जा रहा है। वह मित्रवर्मा की भतीजी मंजुवादिनी से विवाह करना चाहता है। उस शिकारी से मैंने दोस्ती कर ली और एक षड्यन्त्र रचा, जिसमें मित्रवर्मा मारा गया। इसके बाद महारानी ने प्रचण्डवर्मा को माहिष्मती बुला भेजा। उन्होंने उसे लड़की और राज दोनों देने की बात कही। यह सब मेरे कहने के अनुसार हो रहा था। मैं भी अघोरी के भेस में भास्करवर्मा को लेकर भीख मांगने निकला। रानी अपने बेटे को देखकर बड़ी प्रसन्न हुई। प्रचण्ड वर्मा आ चुका था। मैं बाजीगर बनकर उसके सम्मुख तमाशा दिखाने गया। अनेक खेल दिखाने के अनन्तर मैंने मौका पाकर उसको मार डाला और भीड़-भड़क्के में भाग निकला। रानी के लड़के भास्करवर्मा के मारे जाने की बात मैं पहले ही फैला चुका था। अब मैंने रानी की सहायता से उसको [illegible]वत करने का षड्-यंत्र रचा और एक सुरंग में से होकर राजकुमार के

साथ देवी के मन्दिर में प्रकट हुआ। जनता हैरान रह गई। मैंने अपने आप को देवी का भक्त प्रसिद्ध किया और राजकुमार को देवी भवानी का पुत्र। रानी सब कुछ जानती थी। उसे बड़ी प्रसन्नता हुई और उसने मंजुवादिनी का विवाह मेरे साथ कर दिया।

"इसके बाद मैंने राज्य की व्यवस्था ठीक करने की चेष्टा की। सबसे पहले मैंने बुद्धिमान और पंडित नागरिक आर्यकेतु को अपने गुट में मिलाया। प्रजा को इस बात पर विश्वास था कि राजकुमार को देवी ने अपना पुत्र बना लिया है। मैंने अश्मकराज के कर्मचारियों में भी फूट डलवा दी। उनमें से बहुत-से मेरे साथ हो गये। इस पर अश्मकराज ने हम पर चढ़ाई कर दी। उस युद्ध में मैंने उसे मार डाला। इस प्रकार अश्मक का राज्य भी विदर्भ में मिला लिया गया। जनता मेरे इस कार्य से बहुत प्रसन्न थी। जब भास्करवर्मा को गद्दी पर बैठा दिया गया तब मुझे चैन आया। मैं इस देश से विदा होना चाहता था; किन्तु बन्धु भास्करवर्मा ने मेरा बहुत-बहुत उपकार माना और वह किसी भी हालत में मुझे छोड़ने को तैयार नहीं हुआ। इतना ही नहीं उसने उड़ीसा का पूरा राज्य मुझे सौंप दिया। मैंने उसका भी सब प्रबन्ध नये सिरे से किया। इतने में अचानक हमें सिंहवर्मा ने सहायता के कार्य से

अंगदेश बुलाया। मैं सेना लेकर यहां आया तो आपके दर्शनों का भी भारी लाभ हुआ। मैंने पिछले जन्म में अवश्य पुण्य कर्म किये थे।"

१४. उपसंहार

इस समय चम्पानगरी में अपहारवर्मा, उपहार-वर्मा, अर्थपाल, प्रमति, मित्रगुप्त और विश्रुत इकट्ठे हो गये थे। राजकुमार राजवाहन यहां थे ही। उधर पाटलिपुत्र में सोमदत्त युवराज बनकर शासन-कार्य चला रहे थे। उन्हें भी बुला लिया गया। इस प्रकार नौ कुमार इकट्ठे हो गये। केवल पुष्पोद्भव इन लोगों के साथ नहीं थे। ये नौ राज-पुत्र मिलकर चम्पा में जी भर कर आनन्दोत्सव मनाने लगे।

इसी बीच अचानक एक दिन महाराज राजहंस का पाटलिपुत्र से पत्र आया। महाराज को राजकुमार सहित नौ राजपुत्रों के इकट्ठे होने का समाचार मिल चुका था। अतः उन्होंने सबको तुरन्त आने के सम्बन्ध में लिखा। महाराज के आदेश को उन लोगों ने बड़े आदर से, शिरोधार्य कियां और तुरन्त चल देने का निश्चय किया।

इसके बाद सब राजकुमारों ने अपने-अपने देशों

की व्यवस्था की और योग्य कर्मचारियों को अच्छे-अच्छे पद दिये। एक दिन शुभ मुहूर्त्त में सब कुमारों ने मालव की ओर प्रस्थान किया। यद्यपि मालव-राज बड़े शक्तिशाली थे, तथापि इन सबने उन्हें शीघ्र ही हरा दिया। राजवाहन ने अवन्तिसुन्दरी को साथ लिया और पुष्पोद्भव को छुड़ाया। वह मालवा के मंत्री की कैद में थे। सब पाटलिपुत्र पहुंचे। सबने मिलकर महाराज राजहंस और महारानी वसुमति के चरण छुए। उनके आनन्द का पारावार न रहा। दस-के-दस पुत्र उन्हें मिल गये।

उन लोगों ने फिर देश-देशान्तरों को जीता। यथासमय गुरु वामदेव की आज्ञा से महाराज ने युवराज राजवाहन का राज्यतिलक किया और सब राज-काज उनको सौंप कर अपना समय धार्मिक कार्यों में लगाने लगे। सब कुमार भी राजवाहन की आज्ञा लेकर अपने-अपने राज्यों को चले गए, पर उनका आना-जाना बराबर बना रहा।

इस प्रकार उन्होंने अच्छी तरह पृथ्वी पर राज्य किया। उनमें आपस में एका था, इसलिए उन्होंने ऐसे सुख उठाये जो देवताओं को भी मिलने कठिन थे।

'मण्डल' का

कथा-कहानी साहित्य

महाभारत-कथा
राजाजी की लघु कथाएं
दशरथ नन्दन श्रीराम
युगान्त
विनोबा की बोध-कथाएं
उदयन-कथा
भागवत कथा
ध्रुवोपाख्यान
वेद मन्त्रों के प्रकाश में
सती का तेज
त्याग का मूल्य
रामकीर्ति
सप्तदशी
जीवन-पराग
खण्डित पूजा
प्रकाश की रेखा
देवी का दान